भारतीय वास्तुशास्त्र

(वर्तमान सन्दर्भ में समग्र परिशीलन)

शोध एवं लेखनः-

प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी

ज्योतिषाचार्य, एम०ए०, पी०एच०डी०

वरिष्ठ प्रोफेसर एवं निदेशक-ज्योतिष पाठ्यक्रम

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली

चेतावनी

अनुक्रमणिका

अध्याय-प्रथम 02 - 41

- प्राचीन भारत में वास्तुशास्त्र 02
- वास्तु शास्त्र के प्राचीन आचार्य 05
- वास्तुशास्त्र का स्वरूप 06
- शास्त्रों के लक्षणों की कसौटी पर वास्तुशास्त्र 08
- महत्व एवं उपयोगिता 12
- पंचमहाभूत 13
- वास्तु की दृष्टि से पंचमहाभूतों में तारतम्य 19
- प्राकृतिक शक्तियाँ 21
- गुरूत्व शक्ति 21
- चुम्बकीय शक्ति 24
- सौर ऊर्जा 27
- वास्तु के भेद 29
- ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र 32
- भूमि एवं भवन का सुख न मिलने के योग 36
- भूमि एवं भवन प्राप्ति के योग 37
- वास्तुशास्त्र का क्षेत्र और हमारा लक्ष्य 39

अध्याय-द्वितीय 43 - 84

- भूमि की गुणवत्ता 43
- भूमि के दोष 44
- प्रशस्त भूमि 45
- भूमि परीक्षण 45

- भूमि का ढ़लान 48
- आठ वीथियाँ 49
- गजपृष्ठ आदि वीथियाँ 51
- भूखण्ड के आस पास का क्षेत्र 51
- भूखण्डों के आकार 54
- भूखण्ड का विस्तार 63
- भूखण्ड का कटाव 65
- भूखण्ड के समीपवर्ती मार्ग 67
- भूखण्ड के कोनों की माप एवं गोलाई 72
- वेध शूल (दोष) 73
- कोणों में स्थित भूखण्ड 75
- भूखण्डों की श्रेणियां 77
  - (i) उच्च श्रेणी के भूखण्ड 78
  - (ii) मध्यम श्रेणी के भूखण्ड 78
  - (iiii) साधारण श्रेणी के भूखण्ड 79
  - (iv) निम्न श्रेणी के भूखण्ड 80
- शल्योद्धार 80

अध्याय तृतीय 87 -141

- गृहारम्भ का मुहूर्त 87
- विशेष शुभ योग 88
- गृहारम्भ में निषिद्ध 89
- वृष वास्तु चक्र 90
- शिलान्यास के लिए खात और उसकी दिशा 90

➡ तलघर (बेसमेन्ट) 91

➡ कुंआ, बोरिंग एवं भूमिगत टंकी 93

➡ सैप्टिक टैंक 94

➡ भवन की ऊँचाई 95

➡ भवन निर्माण 96

➡ शुभ एवं अशुभ द्विशाल 97

➡ शुभ एवं अशुभ त्रिशाल 99

➡ भवन का द्वार 101

➡ द्वार स्थापना के अन्य नियम 104

➡ शुभ एवं अशुभ ऊर्जा स्थान 105

➡ एकाशीतिपद वास्तु 106

➡ खिड़की, झरोखा, बरामदा 107

➡ ब्रह्म स्थान एवं मर्म स्थान 108

➡ आंगन 114

➡ आवासीय भवन में कक्षों का निर्माण 116

➡ पूजा घर 119

➡ स्नान घर 120

➡ रसोई घर 121

➡ शयन कक्ष 122

➡ भोजन कक्ष 124

➡ अध्ययन कक्ष 125

➡ शौचालय 126

➡ अन्नभण्डार एवं पशुशाला 127

➡ कोषागार 128

➡ भारी सामान का भण्डार 129

➡ रोदन/दण्ड गृह 129

➡ औषधि कक्ष 130

➡ सूतिका गृह 130

➡ दधिमन्थन गृह 131

➡ घी तेल का भण्डार 132

➡ रति गृह 132

➡ आज के सन्दर्भ में भवन निर्माण की समीक्षा 132

➡ भवन निर्माण 132

➡ कपाट (किवाड़) 139

➡ द्वार स्थापना का मुहूर्त 140

➡ घर के समीप वृक्ष एवं वाटिका 140

अध्याय चतुर्थ 143 - 163

➡ बहुमंजिले भवन 143

➡ वर्गीकरण 144

➡ बहुमंजिले आवासीय फ्लैट 146

➡ व्यापारकेन्द्र, दुकान एवं शोरूम 149

➡ दुकान एवं शोरूम की आन्तरिक व्यवस्था 151

➡ कार्यालय की आन्तरिक व्यवस्था 152

➡ होटल एवं रैस्टोरेन्ट 153

➡ अस्पताल एवं नर्सिंग होम 155

➡ मन्दिर एवं धर्म स्थल 157

➡ देवताओं की भूमि 158

➡ मन्दिर के लिए चतुषष्ठिपद वास्तु 158

➡ औद्योगिक संस्थान 160

अध्याय पंचम 165 - 190

➡ वास्तुदोष एवं उनका समाधान 165

➡ भूमि दोष एवं उनका समाधान 166

➡ भवन में वास्तुदोषों का समाधान 171

➡ वास्तु विरूद्ध नक्शे 174

➡ वास्तु शास्त्र के पचास सूत्र 180

➡ गृह प्रवेश का मुहूर्त 185

➡ नूतन गृह प्रवेश 186

➡ कलश चक्र 187

➡ वामरवि विचार 188

➡ द्वार की दिशा और तिथियां 189

➡ पृष्ठकी दिशा और तिथियां 189

➡ पृष्ठस्थ शुक्र 189

➡ जीर्ण गृह प्रवेश 189

➡ गृहप्रवेश की विधि 190

❖ ❖ ❖ ❖

❖

अध्याय-प्रथम

02 - 41

- प्राचीन भारत में वास्तुशास्त्र
- वास्तु शास्त्र के प्राचीन आचार्य
- वास्तुशास्त्र का स्वरूप
- शास्त्रों के लक्षणों की कसौटी पर वास्तुशास्त्र
- महत्व एवं उपयोगिता
- पंचमहाभूत
- वास्तु की दृष्टि से पंचमहाभूतों में तारतम्य
- प्राकृतिक शक्तियाँ
- गुरूत्व शक्ति
- चुम्बकीय शक्ति
- सौर ऊर्जा
- वास्तु के भेद
- ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र
- भूमि एवं भवन का सुख न मिलने के योग
- भूमि एवं भवन प्राप्ति के योग
- वास्तुशास्त्र का क्षेत्र और हमारा लक्ष्य

अध्याय प्रथम

प्राचीन भारत में वास्तुशास्त्र–

ओउम् वास्तोष्पते प्रतिजानीह्य स्मान्त्स्वावेशोऽनमीवो भवान:।
यत्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुश्पदे।। 7/54/1

ओउम् वास्तोष्पते प्रतरणो नऽएधिगयसफानो गोभिरश्वेमिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्थामपितेव पुत्रान्प्रतिनो जुष स्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।। 7/54/2

ओउम् वास्तोष्पते शगमयास सदाते सक्षीमहिरण्ययागातुमत्या।
पाहि क्षेमऽउतयोगेवरन्नो यूयं पातस्वस्तिभिः सदा नः। 7/54/3
ओउम् अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्।
सखासु शेव एधिनः।। वास्तोष्पते ध्रुवा– 8/17

विश्व की प्राचीनतम रचना ऋक्संहिता में वास्तोष्पति से अनेक बार प्रार्थना की गयी है, कि– वे हमारी रक्षा करें।

द्विपद (मनुष्य) एवं चतुष्पद (हमारे पशुओं) का कल्याण करें पिता की तरह हमें सुरक्षा दें मनुष्य समाज एवं हमारे पशुधन का कल्याण करें हमारे योग क्षेम में सहायता करें, हमें स्वस्ति प्रदान करें, और मित्र के समान प्रगति में हमारी सहायता करें।

वैदिक वाङ्मय में वास्तु शब्द का अर्थ है– गृह निर्माण करने योग्य भूमि। ''वस वासे'' नामक धातु से वास्तु शब्द बना है और इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– जिसमें मनुष्य रहते हैं[१]। इस प्रकार वे मकान, भवन, महल, नगर एवं मन्दिर, आदि जिनमें मनुष्य रहते हैं– वास्तु कहलाते हैं। इस वास्तु के वैदिक देवता का नाम वास्तोष्पति है।

कुछ लोगों को यह आशंका है, कि वैदिक काल में लोगों को भवन निर्माण के

---

१. वसन्त्यस्मिन्निति वास्तुः

शिल्प की जानकारी नहीं थी– इस विषय में वैदिक साहित्य का परिशीलन करने पर यह धारणा भ्रान्ति पर आधारित लगती है। वस्तुतः उस समय के ऋषि एवं विद्वान यज्ञों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के कुण्ड, मण्डप एवं वेदियों का निर्माण करते थे, जिनमें ईंटों का प्रयोग होता था[२]। उपनिषदों में वर्णित अनेक प्रसंगों में आश्रमों में पर्णकुटी, यज्ञशाला, गौशाला एवं छात्रावास तथा राजाओं के महलों और मन्दिरों का वर्णन मिलता है। इनका निर्माण करने की प्रविधि शुल्वसूत्रों में बतलायी गयी है। अतः यह कहना कि वैदिक काल में लोग भवन निर्माण की प्रक्रिया से अनभिज्ञ थे, यह एक भ्रान्त धारणा है। हां यह सम्भव है कि उस समय वास्तु एवं भवन निर्माण का शिल्प अपनी प्रारम्भिक अवस्था में रहा होगा, जिसका विकास आगे चल कर स्थापत्यवेद, पुराण एवं वास्तु के अन्य ग्रन्थों के रूप में परिलक्षित होता है।

प्राचीन भारत के जिन ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र का उल्लेख मिलता है– अन्तः साक्ष्य के रूप में उन की सूची इस प्रकार है–

१ वेद-

१ ऋग्वेद

२ यजुर्वेद

३ सामवेद

४ अथर्ववेद

५ स्थापत्य वेद (अथर्व वेद का उपवेद)

२. **पुराण-**

१ मत्स्यपुराण

२ वराहपुराण

३ ब्रह्मवैवर्तपुराण

४ स्कन्दपुराण

५ अग्निपुराण

---

२. विस्तृतजानकारी के लिए देखिए–शुल्वसूत्र

६ देवीभागवतपुराण

७ गरुडपुराण

८ श्रीमद्भागवतपुराण

९ कल्किपुराण

१० भविष्योत्तरपुराण

११ विष्णुधर्मोत्तरपुराण

३ प्राचीन साहित्य

१ वाल्मीकि रामायण

२ महाभारत

४ प्राचीन वास्तुग्रन्थ

१ बृहत्संहिता

२ विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र

३ समरांगण सूत्रधार

४ अपराजित पृच्छ

५ जयपृच्छ

६ प्रमाणमंजरी

७ वास्तुशास्त्र

८ मयमतम्

९ मानसार

५ अन्य वास्तुग्रन्थ

१ वास्तुराज वल्लभ

२ प्रासाद मण्डन

३ वास्तुमण्डन

४ कोदण्डमण्डन

५ शिल्परत्न

६ वास्तुरत्नाकर,

७ ज्योतिर्निबन्ध

८ मुहूर्त चिन्तामणि

९ मुहूर्त गणपति

१० वास्तु सूत्रोपनिषद्

११ बृहद् वास्तुमाला

वास्तुशास्त्र के प्राचीन आचार्य

मत्स्य पुराण में वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक १८ आचार्यों का उल्लेख मिलता है, यथा– १ भृगु २ अत्रि ३ वसिष्ठ ४ विश्वकर्मा ५ मय ६ नारद ७ नग्नजित् ८ विशालाक्ष ९ पुरन्दर १० ब्रह्मा ११ कुमार १२ नन्दीश १३ शौनक १४ गर्ग १५ वासुदेव १६ अनिरूद्ध १७ शुक्र एवं १८ बृहस्पति।

अग्निपुराण में प्राचीन आचार्यों की संख्या २५ तथा मानसार में इनकी संख्या ३२ बतलाई गयी है। बृहत्संहिता में इनके अलावा भास्कर एवं मनु इन आचार्यों का उल्लेख मिलता है और कश्यप शिल्प में महर्षि कश्यप को इस शास्त्र का प्राचीनतम आचार्य माना गया है।

इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे देश में इस शास्त्र के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से पर्याप्त सामग्री मिलती है। वैदिककाल में यज्ञ-यागादि के लिए कुण्ड, मण्डप एवं वेदियों के निर्माण के लिए प्रणीत इस वास्तुशास्त्र का विकसित रुप महाभारत में मय द्वारा निर्मित युधिष्ठिर के सभाभवन के रूप में दिखलाई देता है, जिसका शिल्प इतना विलक्षण एवं समुन्नत था कि जल के स्थान पर स्थल और द्वार के स्थान पर दीवार मिलती थी। वस्तुतः यही सभाभवन महाभारत जैसे युद्ध का कारण बना।

इन सभी तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि वैदिक एवं प्राक् वैदिक काल में भारतीय जनता वास्तुशास्त्र से परिचित थी और उन्होंने इस शास्त्र की अपने जीवन में उपयोगिता को ध्यान में रखकर इस शास्त्र का विकास किया, जिसका वर्णन हमें वेद, पुराण, प्राचीन सहित्य एवं इस शास्त्र के अनेक मानक ग्रन्थों के रूप में आज भी मिलता है।

वास्तुशास्त्र का स्वरूप

मनुष्य के निवासयोग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं, और जिस शास्त्र में– भूमि एवं भवन में आवास करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा और सुरक्षा प्राप्ति के नियमों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहतें हैं।

आवास प्राणीमात्र की आधारभूत आवश्यकता है। प्राणी चाहे मनुष्य हो या मनुष्येतर रहने के लिए सभी को आवास चाहिए। मनुष्य मकान बना कर रहते हैं तो जलचर समुद्र, नदी या तालाब के किनारों पर नभचर घोंसलों, पेड़ों के कोटरों या पुराने खण्डहरों में रहते हैं। वनचर गुफाओं, कन्दराओं या घनेजंगलों में और पालतू पशु मनुष्य के आस–पास अपने रहने की व्यवस्था बना लेते हैं। वस्तुत: जीवन जीने के लिए आवास चाहिए। खुले आकाश एवं खुली धरती पर रहने वाले पशु पक्षी भी अपने बच्चों के जन्म से पहिले उनकी सुविधा एवं सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उनके लिए सुरक्षित स्थान पर आवास की व्यवस्था कर लेते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थित जीवन के लिए आवास हमारी पहली आवश्यकता है।

जीवन क्या है? इस प्रश्न का भिन्न–भिन्न शास्त्रों में भिन्न–भिन्न विचारकों एवं चिन्तकों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से उत्तर दिया है। यदि इस प्रश्न का व्यापक रूप से विचार कर सही और सटीक उत्तर दिया जाय तो कह सकते हैं कि जीवन समस्याओं एवं संकटों की सत्य कथा है। जीवन में ऐसा कोई स्थान या ऐसा कोई

क्षण नहीं है जब प्राणी समस्या या संकट से घिरा न रहता हो। जन्म से लेकर मृत्युकाल तक प्राणी मात्र के जीवन में समस्याओं या संकटों का अनवरत चक्र लगातार चलता रहता है। मनुष्येतर जीव जिनके पास ज्ञान और सुविधा या सुरक्षा के साधनों का लगभग अभाव है वे इन समस्याओं से जूझ कर उनका समाधान निकाल लेते हैं। उदाहरणार्थ—

बीमारियाँ पशु एवं पक्षी आदि सभी जीवों को होती हैं। चोट फेंट एवं दुर्घटना में सभी प्राणी घायल होते हैं। किन्तु इनको मेडीकल साइन्स की जानकारी न होने पर किसी डाक्टर, हकीम या नर्सिंग होम की सुविधा न होने पर भी पशु पक्षियों की बीमारियां ठीक हो जाती हैं। इसी प्रकार सभी पशु पक्षियों को आहार चाहिए। वे अपनी उदरपूर्ति के लिए नौकरी या व्यापार नहीं करते। किन्तु अपना तथा अपने आश्रित छोटे बच्चों का भरण—पोषण कर लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है, कि मानव समाज, जिसको दीर्घकालीन अनुभवों की परम्परा से विकसित ज्ञान एवं विज्ञान प्राप्त है। जिसने अपनी सुविधा एवं सुरक्षा के लिए अनेक प्रणालियाँ विकसित कर ली है, वह इतना सब कुछ होते हुए भी अपने जीवन की समस्याओं और संकटों से न तो उतना जूझता है और न उतना नियन्त्रण ही कर पाता है, जितना मनुष्येतर प्राणी।

आखिर इसका कारण क्या है? ज्ञान और संसाधनों के अभाव में पशु—पक्षियों का निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहना तथा विकसित ज्ञान एवं विज्ञान की जानकारी और उन्नत संसाधनों के होने पर भी मनुष्य का चिन्तित और दुःखी रहना एक तथ्य है, जिसकी ओर हमारे प्राचीन ऋषियों और मनीषी चिन्तकों का ध्यान आकृष्ट हुआ तथा उन्होंने गम्भीरता पूर्वक विचार कर जो निष्कर्ष बतलाये उनका सार इस प्रकार है—

''जीवन की गाड़ी दो पहियों पर चलती है, इनमें से एक है तन और दूसरी है ''मन। जीवन को प्रगति, विकास एवं सन्तुष्टि की ओर ले जाने के लिए इन दोनों का सशक्त एवं सन्तुलित होना जरूरी है। क्योंकि तन या मन में से एक के भी अशक्त

या असन्तुलित होने से जीवन की गाड़ी चरमरा जाती है।

इस ब्रह्माण्ड में सबसे शक्तिशाली प्रकृति है। क्योंकि यही सृष्टि और विकास करती है तथा यही ह्रास या प्रलय करती है। प्रकृति की शक्ति उसके वातावरण में विद्यमान तीन प्रकार के बलों में परिलक्षित होती है। ये बल है– १ गुरूत्वबल २ चुम्बकीयबल एवं ३ सौर ऊर्जा। इन तीनों प्रकार के बलों का उपयोग कर तन, मन एवं जीवन को सक्षम और सन्तुलित बनाने के लिए आवास के जिन नियमों, सिद्धान्तों वादों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया गया है– उनके संकलित स्वरूप को वास्तुशास्त्र कहते हैं।

शास्त्र के लक्षणों की कसौटी पर– वास्तुशास्त्र

वे मानवीय अनुभव, जिनमें १ कार्यकारणता, २ अनुकरणीयता, ३ स्थिरता, ४ सूत्रबद्धता, ५ प्रयोजकता एवं ६ सार्वभौमता हो– शास्त्र कहलाते हैं। प्रत्येक मानवीय अनुभव को शास्त्र के रूप में स्थापित होने के लिए आवश्यक है, कि वह कार्यकारण सम्बन्ध पर आधारित हो, वह अनुकरण करने योग्य हो, वह अपनी मूल संकल्पना और उद्देश्य के बीच स्थिर हो, वह सूत्रों के अनुशासन में उपनिबद्ध हो, उसका कोई कल्याणकारी प्रयोजन हो और वह पूरे विश्व में समान रूप से आचरणीय हो। वास्तुशास्त्र में– क्योंकि उपर्युक्त छः लक्षण ज्यों के त्यों मिलते हैं। अतः यह विद्या वास्तुशास्त्र कहलाती है, यथा–

(i) कार्यकारणता-

कार्य और कारण का नित्य सम्बन्ध है। कारण के बिना कार्य सम्भव नहीं होता। कारण को देखकर होने वाले कार्य का और कार्य को देखकर उसके कारण का अनुमान किया जाता है। उदाहरणार्थ– गुरुत्वबल आवास एवं भूमि के घनत्व या ठोस होने पर आधारित है, जैसे ठोस भूमि पर बना आवास स्थिर और पोली, भूसा, राख, कोयला या हड्डी वाली भूमि पर बना मकान अस्थिर होता है तथा पर्णकुटी से मिट्टी

के कच्चे मकान उससे ईंट के मकान और उससे पत्थर के मकान में उत्तरोत्तर गुरुत्व। ठोसपन होने के कारण गुरुत्वबल अधिक मिलता है। पारिणामत: वे उत्तरोत्तर अधिक टिकाऊ होते हैं।

उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों के बीच में याम्योत्तर क्रम में चुम्बकीय बल प्रवाहित होता है। इसलिए उत्तर की ओर सिरहाना कर सोने वालों के शरीर में हृदय से शरीर के अवयवों तक रक्त संचार में परिवर्तन के कारण मस्तिष्क को पूरा विश्राम नहीं मिलता। परिणामत: अनिद्रा, दु:स्वप्न, सिरदर्द, अपचन, वायुविकार एवं जोड़ों के दर्द आदि बीमारियाँ हो सकती है। इसलिए दक्षिण की ओर सिरहना कर सोना और भूखण्ड के दक्षिणी भाग में शयन कक्ष बनाना वास्तुशास्त्र के अनुसार प्रशस्त माना जाता है।

पूर्व और पश्चिम के बीच में पूर्वापर क्रम से सौर ऊर्जा का प्रवाह रहता है। पूर्व एवं उत्तर द्वार वाले कक्षों में तथा भूखण्ड के पूर्व, ईशान एवं उत्तर भाग में बने कमरों में सौर ऊर्जा के प्रभाव के कारण इनमें रहने वाले लोगों में चुस्ती एवं स्फूर्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। परिणामस्वरूप इनमें रहने वाले लोग जीवन में पर्याप्त प्रगति करते हैं।

(ii) अनुकरणीयता

सुखी जीवन की कामना से लोग वास्तु के नियमानुसार भूखण्ड का चयन कर उस पर शास्त्र सम्मत रीति से द्वार, खिड़की एवं कमरों का निर्माण कर सुखी रहते हैं। इसको देखकर वास्तुशास्त्र के नियमों के विरुद्ध बने मकानों में रहने वाले परेशान लोगों की कठिनाइयाँ दूर करने के लिए उनमें आवश्यक सुधार किया जा सकता है।

अनुकरणीयता का सबसे बड़ा साक्ष्य है— ३० अक्टूबर १९९९ को उड़ीसा के पाराद्वीप, पुरी एवं भुवनेश्वर क्षेत्र में आये विनाशकारी तूफान में वास्तुशास्त्र के अनुसार बने सभी मन्दिरों का सुरक्षित रहना और दिल्ली में मोहम्मद तुगलक द्वारा

वास्तु के विरुद्ध बनाये गये तुगलकाबाद के किले का कभी भी आबाद न होना। हमारे देश में वास्तु के अनुसार बने अन्य स्थलों में तिरुपति के बालाजी का मन्दिर, वृन्दावन में रंगनाथ मन्दिर, काशी में विश्वनाथ मन्दिर, पुरी में जगन्नाथ मन्दिर, आगरा का ताजमहल, दिल्ली की जामामस्जिद, श्रवण वेलगोला में महाबलि की प्रतिमा और अमृतसर में स्वर्णमन्दिर आदि वास्तु के नियमों और उसके परिणामों के उदाहरण हैं।

(iii) स्थिरता

भवन– चाहे वह आवास, व्यवसाय, उद्योग या धार्मिक उद्देश्य से बनाया गया हो– भूमि पर आधारित है। भूमि अपने अक्ष और अपनी कक्षा पर आधारित है, जो चार सौ साठ करोड़ वर्षों से अपने अक्ष पर घूमने के साथ–साथ अपनी कक्षा में परिभ्रमण करते हुए अपना परिभ्रमण स्थिर कर चुकी है। दीर्घकालीन परिभ्रमण के कारण इसमें अपार एवं सुस्थिर चुम्बकीय शक्ति है, जिससे दिक् सूचक यन्त्र (कुतुबनुमा) उत्तर दिशा का संकेत देता है। भूमि के इस स्थिर धरातल पर भवन निर्माण के सुस्थिर नियमों का प्रतिपादन करने के कारण वास्तुशास्त्र में स्थिरता है। कभी–कभी नयी परिस्थिति एवं नये वातावरण के कारण इसके नियमों/उपनियमों में संशोधन या परिवर्धन होता है किन्तु मूलसंकल्पना से लेकर उद्देश्य तक सदैव स्थिर रहता है।

(iv) सूत्रबद्धता

जैसे पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों की गति, स्थिति एवं झुकाव आदि का ज्ञान सूत्रों के द्वारा होता है, वैसे ही वास्तुशास्त्र के आधार भूत सिद्धान्त भी सूत्रों पर आधारित है। उदाहरणार्थ– भूमि जितनी ठोस होगी और उस पर जितने ठोस पदार्थ से आवास बनाया जायेगा वह उतना ही अधिक टिकाऊ होगा यह एक सूत्र है। ईशान कोण में कुँआ या बोरिंग होना चाहिए यह भी एक सूत्र है। ऋण ध्रुव जनित दक्षिण का भू–भाग ऊँचा होना चाहिए– यह भी अन्य सूत्र है। वस्तुतः इस शास्त्र के सभी

आधारभूत सिद्धान्त—नियमों एवं उपनियमों के सूत्रों में उपनिबद्ध है। इसलिए यह शास्त्र सूत्रबद्ध अनुशासन है।

(v) प्रयोजकता

प्रयोजक के बिना कोई भी शास्त्र लोकोपकारी नहीं होता। मानव जाति बुद्धिमानों की जाति है। प्रयोजन के बिना तो पागल भी कुछ नहीं करता फिर बुद्धिशाली मनुष्यों की बात ही और है। वस्तुतः मनुष्य अपने जीवन को सुखी एवं संतुष्ट बनाने के लिये अनेक क्षेत्रों में नित नये प्रयोग करता रहता है। इनमें से जो प्रयोग उसके उद्देश्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, उन्हें वह शास्त्र के रूप में संकलित कर अगली पीढ़ी को पढ़ाता है।

यदि जीवन में प्रगति चाहिए, तो आपके तन, मन एवं जीवन में सन्तुलन होना चाहिए। सन्तुलन के बिना गति हो सकती है, किन्तु वह उद्देश्य की ओर न हो दायें—बायें मुड़कर लक्ष्य से भिन्न दिशा में जा सकती है। लक्ष्य एवं उद्देश्य को तभी पाया जा सकता है, जब सन्तुलन हो।

वास्तुशास्त्र जीवन के सन्तुलन के लिए भूमि एवं भवन के सन्तुलन का प्रतिपादन करता है। इस शास्त्र के अनुसार समतल भूमि में वर्गाकार आयताकार एवं वृत्ताकार भवन की रचना कर उसमें शास्त्रीय रीति से कक्षों (कमरों) का निर्माण कर रहने से जीवन में प्रगति एवं सन्तुष्टि के साथ साथ सन्तुलन मिलता है, जो इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है।

(vi) सार्वभौमिकता

यह शास्त्र १. 'गुरुत्व बल २. चुम्बकीय बल एवं ३. सौर ऊर्जा इन तीन प्रकार के प्राकृतिक बलों का उपयोग करने के नियमों का प्रतिपादन करता है। इन तीनों प्रकार के बलों के केन्द्र पृथ्वी एवं सूर्य हैं। जिनका सम्बन्ध पूरे भूमण्डल से है। इसके अलावा यह शास्त्र धर्म, वर्ण, जाति या क्षेत्र के किसी भी आग्रह से पूर्णरूपेण मुक्त

होकर मानव मात्र की भलाई के लिए भूमि एवं भवन के उपयोग का मार्ग बतलाता है। अत: यह पूरे विश्व में सभी लोगों के लिए समान रूप से स्वीकार्य है।

इस प्रकार वास्तुशास्त्र में शास्त्र के छ: लक्षणों का पूरा–पूरा निर्वाह होने के कारण ही यह शास्त्र कहलाता है।

महत्त्व एवं उपयोगिता

वास्तुशास्त्र का महत्त्व जन–जीवन में इसकी उपयोगिता के कारण है। इस शास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि यह पंच महाभूतों से निर्मित प्राणी के जीवन में इन महाभूतों से निर्मित वातावरण के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। दर्शन, विज्ञान एवं कला से सम्बन्धित सभी शास्त्र यह मानते हैं कि मानव एवं अन्य प्राणी पंच महाभूतों से बने हैं और मानव का तन, मन एवं जीवन इस महाभूतों के सन्तुलन से स्वत: स्फूर्त और असन्तुलन से निष्क्रिय सा हो जाता है। किन्तु इन सभी शास्त्रों में इन महाभूतों का सन्तुलन कैसे बनाया जाय? इसके लिए किन विधियों एवं प्रविधियों (तकनीकों) का उपयोग किया जाय?– इस बारे में वास्तुशास्त्र को छोड़ कर आज तक के सभी ज्ञान एवं विज्ञान मूक दर्शक की तरह खड़े दिखलाई देते हैं। क्योंकि वास्तुशास्त्र– पांच भौतिक प्राणी के जीवन में भूमि, जल, तेज (अग्नि) वायु एवं आकाश इन पांचों महाभूतों का कैसे उपयोग किया जाय?– और मानव मात्र की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को उन्नत कर उन्हें कैसे स्वत: स्फूर्त किया जाय? इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपने नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं विवेचन करता है। अत: इसका महत्त्व एवं इसकी हमारे जीवन में उपयोगिता स्वत: स्पष्ट हो जाती है।

पंचमहाभूत—

पृथ्वी और इसके निवासी प्राणियों में एक विशेष प्रकार की समानता यह है, कि इनकी रचना पंचमहाभूतों के मिश्रण से हुई है, जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश एक निश्चित मात्रा में रहते हैं।

वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह है, कि मनुष्य अपनी सफलता एवं संतुष्टि के लिए अपने आवास में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश का ठीक—ठीक ढंग से उपयोग कैसे करे? हमारे आवास में हमारी सुविधा एवं सुरक्षा के लिए मुख्यतः पृथ्वी (भूमि) जल, तेज (अग्नि) एवं वायु का ही उपयोग किया जाता है। इन चारों का उपयोग करने से आकाश तत्त्व स्वतः अपना कार्य कर लेता है। इस प्रकार वास्तु शास्त्र के अनुसार पंचमहाभूतों के विधिवत उपयोग से बने आवास में पांच भौतिकतत्त्ववाले प्राणी की क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति स्वतः स्फूर्त हो जाती है।

पृथ्वी—

धरती हमारी मां है, क्योंकि यह हमारे तन, मन एवं जीवन को सभी सुविधाऐं प्रदान करती है। हमारा आहार, विश्राम एवं जीवन की अन्य अधिकतम गतिविधियों का आधार धरती ही है। धरती के बिना आवास एवं जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

प्राणीमात्र का शरीर पंचमहाभूतों से बना है। किन्तु इनमें सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्त्व का ही होता है। शरीर में पृथ्वी तत्त्व के बाद जल, तेज, वायु एवं आकाश के भाग उत्तरोत्तर कम होते चले जाते हैं। संयोग की बात है कि हमारे आवास में भी सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्त्व का होता है और जल आदि तत्त्व उत्तरोत्तर कम होते हैं।

इस प्रकार प्राणीमात्र का धरती से एक नैसर्गिक एवं भावनात्मक सम्बन्ध है। और क्योंकि धरती हमें हमारी मां से भी ज्यादा सुविधा एवं सुरक्षा देती है। अतः वेदों

में कहा गया है, कि ''धरती हमारी मां है और हम उसके पुत्र हैं।

इस धरती की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि यह गुरूत्व शक्ति एवं चुम्बकीय शक्ति का केन्द्र है। पृथ्वी ने यह शक्ति अपनी उत्पत्ति के बाद से लगभग ४६० करोड़ वर्षों से अपनी अक्ष और अपनी कक्षा में लगातार भ्रमण से प्राप्त की है। यदि धरती में गुरूत्वशक्ति और चुम्बकीय शक्ति न हो तो क्या भवन निर्माण सम्भव है या हमारे जीवन की गतिविधियां चल सकती हैं? कदापि नहीं। पृथ्वी की गुरूत्वशक्ति का ही परिणाम है कि यह हमें अन्तरिक्ष जैसी गति शून्यता से बचाकर हमारे जीवन को गतिशील बनाती है और अपने धरातल पर बनने वाले भवनों को सुदृढ़ आधार देती है। इसीलिए वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के लिए पृथ्वी तत्त्व का कैसे उपयोग करना चाहिए? इसका विस्तार से विचार करते है। उदाहरणार्थ इस शास्त्र में– भूमि की परीक्षा, मिट्टी की गुणवत्ता, भूमि का ढ़लान, भूमि का शुभाशुभत्त्व, शल्योद्धार, भूखण्ड का चयन, भूखण्ड का आकार, भूखण्ड का विस्तार, समीपवर्ती मार्ग एवं वेध आदि के माध्यम से भूमि का विचार किया जाता है।

जल–

पृथ्वी के बाद जल तत्त्व हमारे जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्राणीमात्र के शरीर में पंचमहाभूतों के अनुपात में पृथ्वी तत्त्व के बाद जल तत्त्व का स्थान है। वैज्ञानिक दृष्टि से इस ब्रह्माण्ड में जिस–जिस ग्रह या उपग्रह पर जल पाया जाता है– वहीं प्राणी के जीवन का अस्तित्त्व मिलता है। इस लिए यह लोकोक्ति एकदम खरी है, कि ''जल ही जीवन है''।

अद्यतन विज्ञान के अनुसार हाईड्रोजन एवं आक्सीजन इन दो पदार्थों के मिलन से जल पैदा होता है। जल बनने के लिए इन दोनों पदार्थों में दो–एक का अनुपात चाहिए। अर्थात् हाईड्रोजन के दो अंश और आक्सीजन का एक अंश जब आपस में मिलते हैं– तो जल स्वयं उत्पन्न हो जाता है।

पूरे भूमण्डल पर अधिकतम वस्तियां वहां बसी हैं? जहां जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। समुद्र, नदी एवं भील के किनारों पर बसे नगर एवं बस्तियाँ इसकी साक्षी हैं। जल की उपलब्धता एवं उसके स्रोत को ध्यान में रख कर भवन निर्माण किया जाता है। अतिवृष्टि के क्षेत्र, अल्पवृष्टि के क्षेत्र एवं तटवर्ती क्षेत्र के भवनों का निर्माण वहां जल की व्यवस्था को ध्यान में रख कर किया जाता है। तात्पर्य यह है कि अतिवृष्टि या हिमपात वाले प्रदेशों में मकान की छतों का ढ़ालदार होना, अल्पवृष्टि के क्षेत्र में जल संग्रह के लिए बावड़ी या हौज आदि का निर्माण करना तथा तटवर्ती इलाकों में बाढ़ से बचाव को ध्यान में रखकर निर्माण कार्य करने की बात यह शास्त्र बतलाता है।

प्रत्येक भवन में जल की उपलब्धता के लिए नल, बोरिंग, नलकूप, कुंआ, भूमिगत टंकी, भवन के उपर टंकी और जल एवं मल के व्ययन हेतु सेप्टिक टैंक, सीवेज, नाली तथा मकान के फर्शों के ढ़लान आदि का विचार इस शास्त्र में किया जाता है।

अग्नि (तेज)—

जल के बाद तेज या अग्नि तत्त्व का क्रम है। शरीर में जब तक ताप है— गरमी है— तब तक जीवन है और इसके ठण्डा पड़ते ही जीवन समाप्त हो जाता है। अग्नि प्रकाश एवं ताप के रूप में ऊर्जा का संचार करता है। इस विश्व में सूर्य उर्जा एवं ऊष्मा (ताप) का मुख्य केन्द्र है।

यह सूर्य जगत की आत्मा माना गया है। यह पूरे विश्व को केवल ऊर्जा, ऊष्मा एवं प्रकाश ही नहीं देता, अपितु इसकी सापेक्षता में पृथ्वी की गति से दिन एवं रात बनते हैं और ऋतुओं का परिवर्तन होता है। शुष्क एवं मानसूनी हवाओं का चलना सूर्य की ऊर्जा और उसके तापमान पर निर्भर रहता है। पूरे भूमण्डल पर जलवायु की दशाओं में जो भी अन्तर मिलता है, उसका मुख्य कारक सूर्य है। इसकी किरणें जहां

लम्बवत सीधी पड़ती हैं– जैसी कि भूमध्य रेखा के समीपवर्ती इलाकों में वहां तापमान अधिक और जहां ये किरणें तिरछी पड़ती हैं जैसा कि उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों पर– वहां तापमान शून्य या उससे नीचे रहता है।

आज के वैज्ञानिक मानव तथा अन्य प्राणियों पर सूर्य आदि ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें, किन्तु वे इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकते, कि– समुद्र की समतलता में, वायुमण्डल के दबाव में, ऋतुओं के परिवर्तन में और भूकम्प आदि की आवृत्तियों में जो घटनाक्रम दिखलाई दे रहा है, उसका सूर्य एवं चन्द्रमा की गतिविधियों के साथ सीधा सम्बन्ध है। पूर्णिमा एवं अमावस्या को समुद्र में ज्वार–भाटे का चढ़ाव–उतार वायुमण्डल में अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक संक्षोभ और भूकम्प के झटकों की आवृत्ति क्यों होती है? इसका कारण है आकाश में सूर्य और चन्द्रमा का आमने–सामने होना या साथ–साथ होना, जब ये दोनों आमने–सामने या साथ–साथ होते हैं, तो वे अपने आकर्षण–विकर्षण के द्वारा समुद्र की समतलता में, वायुमण्डलीय दबाव में और भूमि के सन्तुलन में एक विलक्षण संक्षोभ पैदा कर देते हैं, जिनके परिणाम स्वरूप ज्वार–भाटा, तूफान, चक्रवात एवं भूकम्प जैसी घटनाऐं घटित होती हैं।

पूर्व एवं पश्चिम के लोगों की अथवा उत्तर और दक्षिण के लोगों की जीवन शक्ति और जीवन शैली में जो अन्त पाया जाता है, वह केवल उनके खान–पान के भेद, या जाति अथवा संस्कृति के भेद के कारण नहीं अपितु; यह भेद जलवायु की भिन्नता के कारण है। जलवायु की दशाओं और इसके परिवर्तनों का– मनुष्य की वृद्धि, जीवन शक्ति, क्षमता, अपराधवृत्ति, स्वास्थ्य, समृद्धि एवं सिद्धि आदि पर सीधा असर पड़ता है। और चूंकि जलवायु का यह परिवर्तन विविध राशियों में सूर्य की गति एवं स्थिति पर आधारित होता है। अतः जलवायु के परिवर्तन या उसकी विविधता के माध्यम से पड़ने वाला प्रभाव प्रकारान्तर से सूर्य का ही प्रभाव है।

वस्तुतः जलवायु का परिवर्तन सूर्य की राशि विशेष में गति अथवा हमसे निकट या दूर में स्थिति के कारण होता है। ग्रीष्म ऋतु में वृष या मिथुन राशि में स्थित सूर्य की किरणों में प्रचण्डता और हेमन्त ऋतु में वृश्चिक या धनु राशि में स्थित सूर्य की किरणों में मृदुता का कारण हमारा सूर्य से समीपत्व दूरत्व भाव है। तात्पर्य यह है कि ग्रीष्मऋतु में सूर्य हमारे पास होता है, तब हम उसकी किरणों में प्रचण्डता या तेजी और हेमन्त ऋतु में मृदुता या गुनगुनापन महसूस करते हैं। सूर्य की तेज किरणें से वाष्पीकरण होने के कारण वर्षा और उसकी मात्रा भी सूर्य पर आधारित रहती है। फलतः जलवायु में जो परिवर्तन होता है और इससे मानव जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, वह प्रभाव एक प्रकार से सूर्य का ही प्रभाव है।

वास्तुशास्त्र सूर्य के प्रकाश, तापमान, जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों का भवन निर्माण की प्रक्रिया में पूरा–पूरा उपयोग करता है। इस शास्त्र में द्वार, बरामदा, रसोईघर खिड़कियों झरोखें एवं खुली जगह का विचार अग्नितत्त्व के उचित उपयोग के लिए किया गया है।

वायु–

हमारे जीवन में जल के समान ही वायु तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण है। मानव शरीर में प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान नामक पांच प्रकार का वायु, शरीर का संचालन करता है। जब तक यह वायु शरीर में सक्रिय है, तब तक जीवन है। और जब यह शान्त हो जाता है– शरीर भी चरम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। शरीर में छींक, पाद, डकार, अंगों का फड़कना एवं नाड़ी की धड़कन आदि वायु की सक्रियता के प्रतीक है।

हमारे आस–पास के वायु मण्डल में चारों ओर आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आर्गान, हिलियम, कार्वनडाइ–आक्साइड, ओजोन एवं वाष्पकरण आदि मिले रहते है। प्राणियों के जीवन के लिए और अग्नि को जलाने के लिए आक्सीजन

का होना आवश्यक है इसी प्रकार वृक्ष एवं वनस्पतियों के लिए नाइट्रोजन की आवश्यकता है। प्राणीमात्र के जीवन के लिए वायु में आक्सीजन का २१ प्रतिशत एवं नाइट्रोजन का ७८ प्रतिशत भाग होना जरूरी है।

वायु सभी प्राणियों के जीवन और उनकी गतिविधियों के लिए अनिवार्य तत्त्व है। मानव के शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन, सक्रियता एवं विकास के लिए वायु मण्डल में उक्त गैसों का सही प्रतिशतक मात्रा में होना, खुली हवा का संचार, सही वायुमण्डलीय दाब तथा सही मात्रा में आद्रता या नमी का होना आवश्यक है। इसलिए वास्तुशास्त्र भवन निर्माण में खुली जगह, बरामद, छत की उचाई, द्वार, खिड़की, झरोखे और आसपास में पेड़—पौधे लगाने का विचार करता है, जिससे भवन में वायुतत्त्व का सही और सन्तुलित रूप से उपयोग किया जा सके।

आकाश—

पंचमहाभूतों में आकाश का महत्व कोई कम नहीं है। यह पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु इन चारों तत्त्वों में सबसे बड़ा और सबसे ज्यादा व्यापक है। इसका विस्तार अनन्त है। पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड इसमें सावकाश एवं निरवशेष स्थित है। सावकाश का अर्थ है, कि इस आकाश में ब्रह्माण्ड को रख देने पर अवकाश अर्थात रिक्तता बच जाती है और निरवशेष का अभिप्राय है कि आकाश में ब्रह्माण्ड के स्थित होने पर ब्रह्माण्ड का कोई भी छोटा या बड़ा अंश अवशेष अर्थात् बच नहीं पाता।

इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहां आकाश व्याप्त न हो। कल्पना कीजिए कि यदि आकाश न होता तो क्या होता? तब न धरती होती, न सृष्टि होती, न ब्रह्माण्ड होता, वस्तुतः कुछ भी नहीं होता। क्योंकि प्रत्येक क्रिया या गतिविधि के लिए खाली स्थान चाहिए और वह खाली स्थान देता है आकाश। इसलिए इस ब्रह्माण्ड में आकाश का महत्त्व अक्षुण्ण है।

इस पूरे ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है आकाश के कारण है। चाहे नीहारिकाऐं हों,

अनंत तारे या सौर परिवार के सदस्य ग्रह या उपग्रह हों। चाहे गुरूत्वबल, चुम्बकीय या सौर ऊर्जा हों। चाहे प्रकाश की किरण, विकरण या तरंगें हों या चाहे आक्सीजन, ओज़ोन एवं हिलियम जैसी गैस हो– सब कुछ आकाश में समाहित है।

जैसे हमारे शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य सभी अंग अपनी स्वाभाविक क्रिया आकाश की सहायता से करते हैं वैसे भवन के भीतर और बाहर के सभी क्रिया कलाप आकाश की सहायता से चलते हैं। भवन के अन्दर बातचीत, गाना–बजाना, रोना–धोना, हंसना–खेलना और अन्य कार्य करने में आकाश हमारी सहायता करता है।

इसलिए वास्तुशास्त्र भवन निर्माण में एक शाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतु:शाला, भवन की उंचाई, बहुमंजिला भवन, खुली जगह, बरामदा, द्वार, खिड़की, झरोखे, ब्रह्मस्थान एवं आंगन का विचार करता है, जिससे आकाशतत्त्व का भवन में सही–सही उपयोग किया जा सके।

वास्तु की दृष्टि से पंचमहाभूतों में तारतम्य–

वैसे तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पांचों महाभूतों में से किसका महत्त्व और उपयोगिता अधिक है? यह कहना कठिन है। क्योंकि चाहे ब्रह्माण्ड हो या ग्रह–नक्षत्र और चाहे धरती या इसके चराचर जीव– सभी पंचमहाभूतों से बने हैं। अत: पंचमहाभूतों में तारतम्य करना कठिन है।

फिर भी वास्तु एवं वास्तुशास्त्र की दृष्टि से इनके तारतम्य का विचार कर किसी निर्णय पर पहुंचना है, तो इन पंचमहाभूतों के गुण–धर्मों का विचार कर लेना चाहिए, यथा– पृथ्वी में सामान्यतया पांच गुण मिलते हैं। १. शब्द २. स्पर्श ३. रूप ४. रस और ५. गन्ध। इन पांचों गुणों में से गन्ध पृथ्वी का अपना विशेष गुण है, क्योंकि वह पृथ्वी के अलावा अन्य महाभूतों में नहीं मिलता। जल में सामान्यतया चार गुण मिलते हैं– १. शब्द २. स्पर्श ३. रूप एवं ४. रस इन चारों में से जल का अपना

विशेष गुण है शीतलस्पर्शजल चाहे जितना गरम कर दिया जाय वह चाहे वाष्प बन कर उड़ ही क्यों न जाय। किन्तु अन्ततोगत्वा उसमें शीतलस्पर्श बना ही रहता है। अत: शीतल स्पर्श उसकी विशेषता है। तेज (अग्नि / प्रकाश) में सामान्यतया तीन गुण मिलते हैं– १. शब्द २. स्पर्श ३. रूप। इसका अपना विशेष गुण उष्ण (गरम) स्पर्श है। वायु में सामान्यतया दो गुण मिलते हैं– १. शब्द और २. स्पर्श। इसका अपना विशेष गुण है– रूप रहित स्पर्श। और आकाश में एक मात्र गुण है शब्द। यह गुण सामान्य भी है, क्योंकि अन्य महाभूतों में मिलता है। तथा यह गुण आकाश का विशेष गुण भी है, क्योंकि यह इसका एकमात्र गुण है।

पंचमहाभूत	सामान्य गुण	विशेषगुण
पृथ्वी	शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध	गन्ध
जल	शब्द,स्पर्श,रूप,रस	शीतल स्पर्श
तेज (अग्नि / प्रकाश)	शब्द,स्पर्श,रूप	उष्ण स्पर्श
वायु	शब्द,स्पर्श	रूपरहित,स्पर्श
आकाश	शब्द	शब्द

इस प्रकार हम देखते हैं कि धरती से लेकर आकाश तक पांचों महाभूतों में उत्तरोत्तर गुणों का ह्रास हो रहा है। इसलिए भवन और जीवन इन दोनों बिन्दुओं को अपने विचार का केन्द्र बिन्दु मानकर वास्तुशास्त्र में पंचमहाभूतों में एक तारतम्य माना गया है, जिसके अनुसार पंचमहाभूतों की १५ कलाऐं होती हैं और उनमें से आकाश की १ कला, वायु की २ कला, तेज की ३ कला, जल की ४ कला, और पृथ्वी की ५ कलाऐं मानी गयी हैं। इस शास्त्र का दृष्टिकोण यद्यपि पूर्णत: दार्शनिक नहीं है– यह अपेक्षाकृत व्यावहारिक अधिक है, क्योंकि यह भूमि एवं भवन में निवास

करने वालों की सुविधा एवं सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। अत: वास्तु शास्त्र के अनुसार पंचमहाभूतों में तुलनात्मक दृष्टि से भूमि या पृथ्वीतत्त्व का स्थान सर्वोपरि है। और अन्य जल आदि महाभूतों का तारतम्य उनकी कलाओं या गुणों के अनुपात के अनुसार जाना जा सकता है।

प्राकृतिक शक्तियाँ—

प्रकृति शक्तियों का अक्षुण्ण भंडार है। इसकी शक्तियाँ अनन्त हैं, जिनके माध्यम से सृष्टि, विकास एवं प्रलय की प्रक्रिया चलती रहती है। इन अनन्त शक्तियों में से वास्तुशास्त्र मुख्य रूप से प्रकृति की तीन शक्तियों का उपयोग करता है—१. गुरुत्वशक्ति, २. चुम्बकीय शक्ति एवं ३. सौर ऊर्जा। यह शास्त्र प्रकृति की अन्य शक्तियों को नकारता नही है, किन्तु इसकी दृष्टि भवन निर्माण और उसमें रहने वाले प्राणियों तक ही सीमित है। अत: यह भूमि एवं उसके आसपास में विद्यमान उक्त तीन शक्तियों का ही विचार करता है।

गुरुत्त्व शक्ति—

जिस प्रकार पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप रस एवं गन्ध ये पांच गुण हैं और इसका विशेष गुण गन्ध है। उसी प्रकार पृथ्वी में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं— चुम्बकीय शक्ति और गुरुत्व शक्ति, तथा इसकी विशेष शक्ति गुरुत्त्व शक्ति है, जिसे गुरुत्त्वाकर्षण शक्ति भी कहते हैं।

गुरुत्व शक्ति या गुरुत्त्वाकर्षण का अर्थ है, कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, जिससे वह अपने ऊपर आकाश में स्थित वजनी चीजों को अपनी ओर खींच लेती है।[3] इस सिद्धान्त का सार एक शब्द द्वारा अभिव्यक्त होता है, जिसका नाम है गुरुत्व। गुरुत्व का अर्थ वजनी या भार वाला जिस चीज में जितना वजन या भार है, पृथ्वी उस चीज को उतनी तेज गति से खींचती है। उदाहरणार्थ— किसी मकान के ऊपर की

३. आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत्खस्थं गुरु स्वामिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते .... सिद्धान्तशिरोमणि— गोलाध्याय

छत से समान आयतन वाला एक पत्थर का टुकड़ा, एक ईंट का टुकड़ा और एक थर्मोकोल का टुकड़ा एक साथ फेंका जाय, तो सबसे पहिले पत्थर का टुकड़ा, उसके बाद इंट का टुकड़ा और सबके बाद थर्मोकोल का टुकड़ा धरती पर गिरेगा। क्योंकि थर्मोकोल के टुकड़े से ईंट के टुकड़े में और उससे पत्थर के टुकड़े में वजन ज्यादा है और जिसमें वजन ज्यादा है, उसको धरती अपनी आकर्षण शक्ति से तीव्रतर वेग से अपनी ओर खींचती है।

धरती की यह गुरुत्व शक्ति न केवल इसके ऊपर बनने वाले मकानों को स्थिरता एवं स्थायित्व प्रदान करती है। अपितु यह हमारे जीवन के समस्त क्रिया–कलापों को गतिशीलता देती है। कल्पना कीजिए कि कदाचित् पृथ्वी में गुरुत्वशक्ति न होती, तब संसार कैसा होता? उत्तर स्पष्ट है, तब संसार में अन्तरिक्ष जैसी गतिशून्यता होती और नगर, गाँव, बस्तियाँ या भवनों का निर्माण भी सम्भव न होता।

वास्तुशास्त्र ने भूमि की इस गुरुत्व शक्ति को ध्यान रखकर ही भवनों के स्थायित्त्व का वर्गीकरण किया है। इस विषय में इस शास्त्र ने चार प्रकार के मकानों (I) झोपड़ी या पर्णकुटी (II) मिट्टी से बने कच्चे घर (III) इंट चूने से बने पक्के घर और (IV) पत्थर से बने पक्के घरों[४]– का विवेचन करते हुए कहा है, कि स्थापित्त्व, परिणाम एवं रख–रखाव की दृष्टि से झोपड़ी से कच्चे घर, उससे ईंट के बने घर और उससे पत्थर से बने घर उत्तरोत्तर अधिक टिकाऊ और सुविधा जनक होते हैं।

कुछ अन्य आचार्यों ने आवास के लिए पाँच प्रकार के मकानों का वर्णन किया है–

१. घास–फूँस से बनी झोंपड़ी या पर्णकुटी।

२. लकड़ी से बने छोटे घर।

---

४. कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे।।
बृहद्वास्तुमाला श्लो० ५

३. मिट्टी, छप्पर या खपरैल से बने कच्चे घर।

४. ईंट, चूना या सीमेन्ट से बने पक्के घर।

५. पत्थर से बने भवन।

इन सभी प्रकार के मकानों में उत्तरोत्तर स्थायित्त्व का कारण यह है, कि इन मकानों के निर्माण में जिस सामग्री की इस्तेमाल किया गया है, उसमें उत्तरोत्तर भार और घनत्व अधिक है जैसे बाँस, बल्ली एवं फूस से लकड़ी में, उससे मिट्टी एवं खपरैल में, उससे ईंट, चूना एवं सीमेन्ट में और उससे पत्थर में वजन तथा घनत्व अधिक होता है। परिणामतः इनसे बनने वाले मकानों में टिकाऊपन एवं सुविधा भी अधिक होती है। कारण स्पष्ट है कि जो चीज जितनी ठोस और वजनी होगी– वह धरती की गुरुत्त्व शक्ति के प्रभाववश उतनी ही टिकाऊ या स्थायी होगी।

इस शास्त्र में पृथ्वी की गुरूत्व शक्ति का उपयोग भवन निर्माण की सामग्री मात्र में ही नहीं किया गया, अपितु भवन निर्माण के लिए प्रयुक्त भूखण्ड की मिट्टी के घनत्व की जाँच में भी किया गया है। उदाहरणार्थ वास्तुग्रन्थों में खात की विधि का विवेचन करते हुए आचार्य कहते हैंकि–"यदि भवन निर्माण के लिए खोदते समय भूमि में दीमक, अजगर, भूसा, हड्डी, राख, अण्डे, कौड़ी, रूई, जली हुई लकड़ी खप्पर या लोहा मिले, तो वहां आवास नहीं बनाना चाहिए।" भूखण्ड की मिट्टी में इन चीजों के मिलने से स्पष्ट है, कि उस स्थान की मिट्टी ठोस नहीं अपितु पोली है। जहाँ मिट्टी ठोस हो वहाँ भूमि की गुरुत्त्व शक्ति के प्रभाववश मकान को स्थायित्व मिलता है और जहाँ मिट्टी पोली हो वहाँ बना मकान बालू या रेत के ढ़ेर पर बने मकान की तरह क्षण भंगुर होता है। इसीलिए वास्तुशास्त्र के सभी आचार्यों ने खात

५. पिपीलिका षोडश पक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्वा मरणप्रदाः स्युः।।
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्णस एवाति ददाति दुःखम्।
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोग भीतिर्भवेत्कलिः खर्पर दर्शनेन।
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्य विचार्य वास्तु प्रदिशन्ति धीराः।। बृहद्वास्तुमाला श्लो० ११४–१५

की विधि के माध्यम से धरातल की और भवन निर्माण की सामग्री के माध्यम से घर के ढाँचे के स्थायित्त्व का विचार करते हुए भूमि की गुरुत्व शक्ति का समुचित उपयोग करने का शास्त्रीय प्रयास किया है।

चुम्बकीय शक्ति—

पूरा ब्रह्माण्ड एक चुम्बकीय क्षेत्र है और ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारों का आपस में चुम्बकीय तरंगों से पारस्परिक सम्बन्ध बना हुआ है। चुम्बकीय शक्ति प्रकृति की वह शक्ति है, जिससे वह पूरे ब्रह्माण्ड को संचालित और नियन्त्रित करती है

सौर परिवार के अन्य ग्रहों के समान पृथ्वी भी एक बहुत बड़ी चुम्बक है। पिछले ४६० करोड़ वर्षों से अपनी कक्षा और मुख्य रूप से अपने अक्ष पर लगातार घूमने से पृथ्वी ने अपनी चुम्बकीय शक्ति को उन्नत और विकसित किया है।

चुम्बक के दो ध्रुव होते है।— १. उत्तर ध्रुव एवं २. दक्षिण ध्रुव। इसी प्रकार पृथ्वी के भी दो ध्रुव होते हैं। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। चुम्बक का जो सिरा उत्तर की ओर होता है, वह उसका उत्तर ध्रुव और उसका जो सिरा दक्षिण की ओर होता है, वह दक्षिण ध्रुव कहलाता है। किन्तु पृथ्वी का चुम्बकीय उत्तरध्रुव दक्षिण गोल में और उसका चुम्बकीय दक्षिण ध्रुव उत्तर गोल में होता है। इसीलिए चुम्बक के टुकड़े को किसी चीज से बाँधकर लटका दिया जाय तो वह याम्योत्तर रेखा में रहता है और उसके सिरे उत्तर—दक्षिण दिशाओं को दिखलाते हैं।

इस विषय में यह सर्वविदित तथ्य है कि लटकाये हुए चुम्बक के उत्तर ध्रुव के पास यदि एक और चुम्बक का उत्तर ध्रुव ले जाया जाय तो वे अलग हो जाते हैं और यदि उसके पास अन्य चुम्बक का दक्षिण ध्रुव ले जाया जाय तो वे खिंच जाते हैं। तात्पर्य है कि दो चुम्बकों के विजातीय ध्रुवों में आकर्षण तथा सजातीय ध्रुवों में विकर्षण होता है। चुम्बक के इन आकर्षण एवं विकर्षण से जब ब्रह्माण्ड और

सौरपरिवार की गतिविधियों को गतिशीलता मिलती है, तब ये हमारे जीवन की गतिविधियों को कैसे प्रभावित नहीं करेंगे?

अभी तक हम हमारे शरीर के दाहिने अंगों की अधिक सक्रियता और बाँये अंगों की अपेक्षाकृत कुछ कम सक्रियता की सही–सही व्याख्या नहीं कर पाये हैं। फिर चुम्बकीय शक्ति के आकर्षणों एवं विकर्षणों का जनजीवन पर पड़ने वाले सतत प्रभाव की व्याख्या करना हमारे लिए और भी कठिन बात है। यह तो हमारे ऋषियों–मनियों के बस की बात थी, कि उन्होंने अपनी एकाग्रता, धैर्य, विश्वास एवं तटस्थता द्वारा अपनी आन्तरिक चेतना को विकसित कर अपनी अन्तश्चेतना द्वारा प्रकृति की शक्तियों और सृष्टि के रहस्यों का साक्षात्कार कर जन–जीवन में उनका उपयोग करने के नियमों का प्रतिपादन किया।

सामान्य मानवीय बुद्धि को अन्तश्चेतना (Intuition) तक विकसित करने की सैद्धान्तिक प्रक्रिया इस प्रकार है– "प्रत्येक मानव में बुद्धि होती है, जो सद्–असद् का विवेचन या अच्छे और बुरे को पहिचानती है। यदि इस बुद्धि के साथ एकाग्रता जुड़ जाय, तो बुद्धि को एक नयी अवस्था मिल जाती है जिसे मेधा कहते हैं और जिसके पास मेधा होती है वह मेधावी कहलाता है। यदि मेधा के साथ धैर्य जुड़ जाय, तो उसको एक और नयी अवस्था मिल जाती है, जिसे प्रज्ञा कहते हैं और जिसके पास प्रज्ञा होती है, वह प्राज्ञ कहलाता है। यदि प्रज्ञा के साथ विश्वास जुड़ जाय तो उससे भी एक नयी अवस्था मिल जाती है, जिसे प्रतिभा कहते हैं और जिसके पास प्रतिभा होती है, वह प्रतिभावान् आचार्य कहलाता है और इसी प्रकार यदि प्रतिभा के साथ तटस्थता जुड़ जाय, तो उसको एक सर्वथा नयी और विश्वसनीय अवस्था मिल जाती है, जिसे अन्तश्चेतना कहते हैं तथा जिसके पास यह अन्तश्चेतना या अन्तर्दृष्टि होती है, वह देश एवं काल से अतीत होकर तथ्य और सत्य दोनों का साक्षात्कार करता है।

क्या आज के विद्वान् एवं वैज्ञानिकों के पास ऐसी एकाग्रता, धैर्य, समग्र विश्वास एवं तटस्थता है? यदि नहीं, तो वे प्रकृति एवं सृष्टि की ऊपरी सतह को ही टटोल सकते हैं– उसके रहस्यों को जानकर उनका उद्घाटन नहीं कर सकते। वस्तुतः आज का विज्ञान अपनी शैशवावस्था है जब तक वह पूर्ण विकसित न हो जाय, तब तक उससे सृष्टि के रहस्यों को जानने और पहिचानने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

यह भृगु, अत्रि, कश्यप, वसिष्ठ, नारद, शौनक एवं गर्ग आदि ऋषियों के ही बस की बात थी, कि उन्होंने प्रकृति की शक्तियों और सृष्टि के रहस्यों को जानकर जीवन को सुविधाजनक बनाने के अनेक उपयोगी नियमों का प्रतिपादन वास्तुशास्त्र के नाम से किया।

पृथ्वी के चुम्बकीय बल का अपने जीवन में कैसे उपयोग किया जाय? इस बात से भारतीय जनता सम्भवतः प्राचीन काल में ही परिचित हो चुकी थी। इसलिए हमारे देश में उत्तर की ओर सिरहाना न करके सोने की प्रथा प्रचलित है। कारण यह है कि यदि कोई व्यक्ति उत्तर की ओर सिर करके सोता है, तो उसके शरीर के चुम्बकीय बल की दिशा और पृथ्वी के चुम्बकीय बल की दिशा एक दूसरे के विपरीत हो जाती है। इससे शरीर के रक्त संचार में बाधा होने से अनिद्रा, सिर दर्द, तनाव, दुःस्वप्न एवं वातव्याधियाँ हो सकती है। अतः उत्तर की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए।

वास्तुशास्त्र में भवन के उत्तर में अधिक खुला स्थान छोड़ना उत्तर की ओर खिड़की, दरवाजे एवं झरोखों का अधिक होना, उत्तर में जमीन का ढ़लान होना, उत्तर में भवन की ऊँचाई का कम होना तथा उत्तर में ऊँचे पड़े या किसी अन्य भवन का न होना आदि नियम आवासीय भवन में चुम्बकीय बल के उपयोग के लिए बनाये गये हैं।

सौर ऊर्जा

पृथ्वी को मिलने वाली ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है। सौर मण्डल में यह ऊर्जा का केन्द्र है। यह अपनी विकिरणों के माध्यम से धरती पर ऊर्जा, ऊष्मा (ताप) एवं प्रकाश देकर हमारे जीवन को गतिशील बनाता है।

सूर्य से निरन्तर निकलने वाली विकिरणों को मुख्यतया तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है—

१. पराबैंगनी किरणें

२. वर्णक्रम प्रकाश और

३. रक्ताभ किरणें

इनमें से पराबैंगनी किरणें शीतल होती हैं और इन में विषाणुओं को नष्ट करने की रासायनिक क्षमता होती है। वर्णक्रम प्रकाश में इन्द्रधनुष के सात रंगों की रश्मियाँ होती है, जिनका वर्ण क्रमशः बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल होता है। इन सात रंग की रश्मियों का प्रभाव अलग—अलग होता है। मुख्य रूप से बैंगनी, नीले और आसमानी रंग की रश्मियों में मृदुता या शीतलता होती है और ज्यों—ज्यों बैंगनी से लाल रश्मियों की ओर बढ़ते हैं, त्यों—त्यों शीतलता घटती और ऊष्णता बढ़ती चली जाती है। नारंगी और लाल किरणों में ऊष्णता अधिक होती है। इसी प्रकार रक्ताभ किरणों में उष्णता सर्वाधिक होती है।

प्रातःकाल सूर्य की किरणों में परा बैंगनी किरणें अधिक और रक्ताभ कम होती है। इसलिए प्रातः सूर्य की किरणों में गरमी कम होती है। इस समय सूर्य की किरणों से शरीर को पोषक विटामिन जैसे तत्त्व मिलते हैं और पराबैंगनी किरणें वातावरण में विद्यमान विषाणुओं का नाश कर देती है। तात्पर्य यह है कि जैसे हम प्रातःकाल झाडू—पोंछा कर अपने घर को साफ करते हैं उसी प्रकार प्रातःकाल सूर्य की पराबैंगनी किरणें रात्रि के प्रदूषण एवं विषाणुओं को नष्ट कर भूमण्डल के वातावरण को शुद्ध

एवं साफ बना देती है।

इसके बाद धीरे–धीरे जैसे–जैसे दिन चढ़ता है, धूप में रक्ताभ (इन्फ्रारेड) किरणों की मात्रा बढ़ती जाती है, जिससे धूप में गर्मी और तेजी से बढ़ जाती है। दिन के तीसरे प्रहर में सूर्य की धूप में स्थित रक्ताभकिरणें इतनी गर्मी छोड़ती है, जो अवांछित और असहनीय होती है। इसलिए उससे बचाव करना आवश्यक हो जाता है।

पृथ्वी और पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति का मूलकारण सूर्य है। यह न केवल पृथ्वी को अपनी कक्षा में घुमाता है, अपितु यह हमारे जीवन की गतिविधियों का भी सूत्रधार है। प्राणीमात्र की दिनचर्या का प्रारम्भ सूर्योदय से और उपसंहार सूर्यास्त के साथ होता है। यदि सूर्य न होता, तो न पृथ्वी होती, न प्राणी होते और न ही जीवन होता। इसीलिए सूर्य इस जगत की आत्मा है।[६]

सूर्य का व्यास ८,६५, ६८० मील है। इसकी पृष्ठीय परिधि से इसकी ज्वालाएँ २०० से ३०० मील प्रति सैकेण्ड की गति से लगातार ऊपर की ओर लपकती है। इसका बिम्ब प्रति सैकेण्ड ३.७ X १०[illegible] वाट शक्ति विश्व को देता है, जिसका दो सौ करोड़वाँ भाग पृथ्वी ग्रहण करती है। इससे आप सौर ऊर्जा की शक्ति का अनुमान कर सकते हैं।

सूर्य की यह ऊर्जा, जिसमें उसकी ऊष्मा एवं प्रकाश अन्तर्निहित है– हमारे तन, मन एवं जीवन को न केवल शक्ति और स्फूर्ति ही प्रदान करती है, अपितु यह हमारी दिनचर्या को संचालित और नियन्त्रित भी करती है। इसलिए वास्तुशास्त्र के आचार्यों ने निर्मित भवन में सौर ऊर्जा के उपयोग के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण नियमों का प्रतिपादन किया है।

उदाहरणार्थ– यदि प्रातःकाल सूर्य की किरणें हमारे घर और आँगन में प्रसारित हों, तो पराबैंगनी किरणों के प्रभाववश घर और घर में रहने वाले लोगों को इसका

---

६. सूर्यो आत्मा जगतस्तस्युषश्च

पर्याप्त लाभ होगा। इसके लिए घर की पूर्व दिशा में खुला भाग छोड़ना, घर के पूर्व में द्वार खिड़की एवं झरोखे बनाना और घर के पूर्व भाग में वृक्षों को न लगाना आदि नियम बतलाये गये हैं।

अपराह्न एवं सांयकाल सूर्य की रक्ताभ किरणों की गरमी और उससे होने वाली हानि से बचने के लिए ही घर के पश्चिमी भाग में वृक्षारोपण का विधान है।

वस्तुतः, हमारे ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों ने प्रकृति एवं सृष्टि के रहस्यों का साक्षात्कार कर हमारे जीवन में प्रकृति की शक्तियों का उपयोग करने के लिए वास्तुशास्त्र के अनेक नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। विज्ञान अपनी प्रारम्भिक दशा में होने के कारण इन नियमों एवं द्धिान्तों का पूरा–पूरा विवेचन नहीं कर पाता। धीरे–धीरे वैज्ञानिक अनुसन्धानों में जैस–जैसे परिपक्वता आयेगी, हमें वास्तुशास्त्रीय नियमों की अच्छी और तर्कसंगत वैज्ञानिक व्याख्या मिल जायेगी।

वास्तु के भेद

वास्तु शब्द का अर्थ है– जिसमें लोग बसते हों। इस प्रकार जिस भूमि या भवन में लोग रहते हैं– उसे वास्तु कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है–

१. आवासीय

२. व्यावसायिक एवं

३. धार्मिक।

आवासीय वास्तु मुख्य रूप से पाँच प्रकार की होती है–

१. घास–फूस से बनी पर्णकुटी या झोपड़ी।

२. लकड़ी से बने घर

३. मिट्टी, छप्पर या खपरैल से बने कच्चे घर

४. ईंट, चूना, लोहा एवं सीमेन्ट से बने पक्के घर

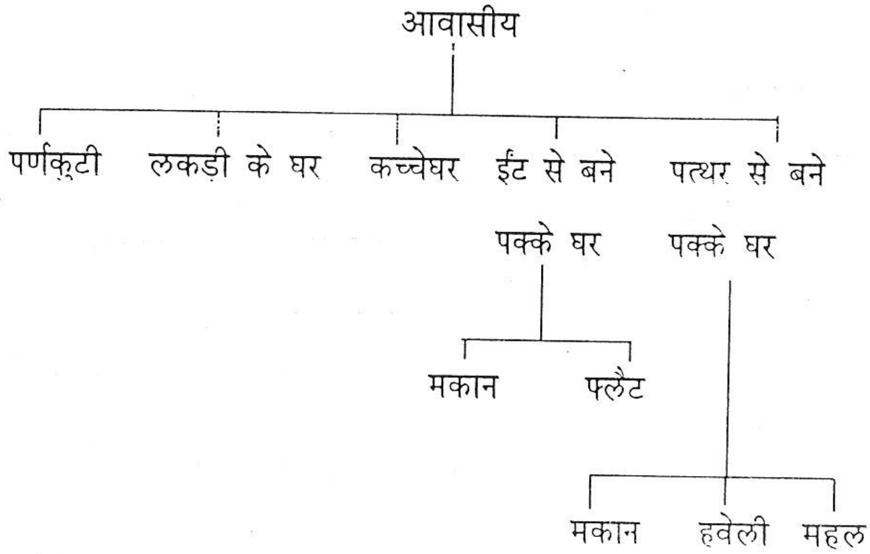
५. पत्थर से बनी हवेलियाँ/महल आदि

आज के युग में पक्के मकान भी दो प्रकार के होते हैं–

१. मकान एवं

२. फ्लैट।

इस प्रकार आवासीय वास्तु के भेद इस प्रकार है–



व्यावसायिक वास्तु दो प्रकार की होती है–

१. व्यापारिक एवं

२. औद्योगिक।

व्यापारिक वास्तु के भेद होते हैं–

१. दुकान

२. शोरूम

३. ऑफिस एवं होटल आदि। ये चारों भी एक मंजिला और बहुमंजिला के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

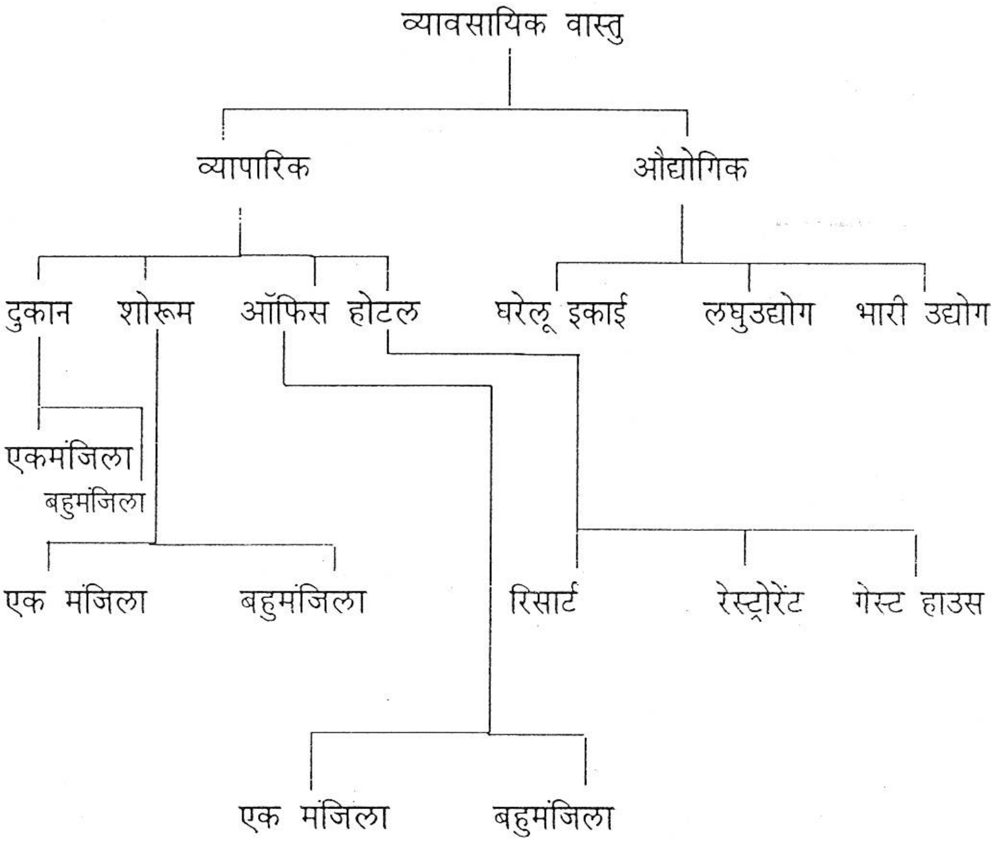
आद्यौगिक वास्तु के मुख्यतया तीन भेद होते हैं–

१. घरेलू इकाई

२. लघु उद्योग

३. भारी उद्योग।

इस प्रकार व्यावसायिक वास्तु के भेदों का विचार किया जाता है, जिसमें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन सम्भव है।



धार्मिक वास्तु मुख्यतया पाँच प्रकार की होती है–

१. मन्दिर आदि

२. मठ

३. धर्मशाला

४. जलाशय

५. धार्मिक संस्थान।

धार्मिक वास्तुओं में मन्दिर आदि से तात्पर्य मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च

आदि पूजा स्थलों से है। इस विषय में मठ का अर्थ आश्रम, मठ, बौद्ध बिहार आदि से है और जलाशय का अर्थ कुआँ, बावड़ी तालाब एवं धार्मिक सरोवरों से है।

वस्तुतः किसी प्रकार का कोई भवन या निर्माण किया जाय, जिसका लोग व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में उपयोग करते हैं– वह वास्तु कहलाता है। उसके समय–समय पर परिस्थितियों के अनुसार अनेक भेद हो सकते हैं। यहाँ उदाहरणार्थ मुख्य भेद बतलाये गये हैं। आवश्यकतानुसार विद्वान अन्य भेदों की कल्पना कर सकते हैं।

धार्मिक वास्तु

मन्दिर आदि | मठ आदि | धर्मशाला आदि | जलाशय | धार्मिक संस्थान

ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र

वास्तुशास्त्र भारतीयज्योतिष की समृद्ध एवं विकसित शाखा है। इन दोनों में अंग–अंगीभाव सम्बन्ध है। जैसे शरीर का अपने विविध अंगों के साथ सहज एवं अटूट सम्बन्ध होता है, ठीक उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र का अपनी सभी शाखाओं– सामुद्रिकशास्त्र, स्वरशास्त्र, अंकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र आदि के साथ स्वाभाविक एवं अटूट सम्बन्ध है।

ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र में इतनी निकटता का कारण यह है, कि दोनों का उद्भव वैदिकसंहिताओं से हुआ है, दोनों का विकास भारतीय जीवन–दर्शन से प्रेरित रहा है, दोनों शास्त्रों का लक्ष्य मानव मात्र को सुविधा और सुरक्षा देना है तथा दोनों ही शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय जीवन में घटित होने वाला घटनाक्रम है। इस लिए ये दोनों शास्त्र एक– दूसरे के पूरक हैं।

इतनी निकटता होने पर भी इन दोनों शास्त्रों की दृष्टियों में एक मौलिक अन्तर है–

वास्तुशास्त्र जीवन के घटनाक्रम की अनूकूलता या प्रतिकूलता का कारण वातावरण को मानता है। अत: वह हमारे वातावरण में विद्यमान गुरुत्त्व शक्ति, चुम्बकीय शक्ति एवं सौर ऊर्जा के समुचित प्रयोग एवं उपयोग के द्वारा जीवन को प्रगति एवं संतुष्टि की ओर ले जाता है। जबकि ज्योतिषशास्त्र जीवन में अनकूलता या प्रतिकूलता के चार कारण मानता है–

१. वंशानुक्रम

२. वातावरण

३. कर्म एवं

४. काल।

यह शास्त्र वातावरण को नकारता नहीं है, अपितु उसे स्वीकार करते हुए वंशानुक्रम, कर्म एवं काल को भी जीवन में सफलता या असफ़लता का कारण मानता है। इसलिए ज्योतिष का दृष्टिकोण व्यापक है।

एक राजमहल में रहने वाली एक दो पीढ़ियों को विजय, समृद्धि एवं सम्मान का मिलना और उसी राजमहल में रहनेवाली अगली पीढ़ियों को पराजय के साथ अनेक कष्टों का मिलना– यह ऐसी ऐतिहासिक घटना हैं, जो विश्व के इतिहास में हर कदम और हर समय मिल जाती है। इन घटनाओं में एक जैसे भवन में रहने वाले दो भिन्न पीढ़ियों के लोगों के दो भिन्न कालों में दो प्रकार के परस्पर विरोधी फल मिले हैं। इसका उत्तर वस्तुशास्त्र के पास नहीं है। क्योंकि वह काल का विचार नहीं करता। इसका सही एवं सटीक उत्तर ज्योतिषशास्त्र के पास ही है।

यदि ऐतिहासिक घटनाओं को छोड़कर केवल वर्तमान का ही विचार किया जाय तो आज महानगरों की बहुमंजलीय इमारतों के फ्लेटों में भिन्न–भिन्न मंजिलों पर रहने वाले परिवारों को भिन्न–भिन्न प्रकार की परिस्थिति में रहते हुए देखा जा सकता है। इनमें एक मंजिल के फ्लैट में रहने वाला परिवार बीमारी से पीड़ित है, तो

उसी इमारत की अन्य मंजिल पर रहने वाला परिवार स्वस्थ है। इसी प्रकार एक फ्लैट में रहने वाले सम्पन्न और दूसरे में रहने वाले आर्थिक संकट में हैं या एक फ्लैट में रहने वालों में कलह और दूसरे फ्लैट में रहने वालों में आपसी सहयोग है अथवा एक फ्लैट में रहनेवालों में मानसिक दबाव और दूसरे फ्लैट में रहनेवालों में मानसिक उन्मुक्तता दिखलाई देती है। वस्तुतः महानगरों की बहुमंजलीय इमारतों में किसी भी एक तरफ बने सभी मंजिलो के फ्लैटों की दिशा और विभिन्न कक्षों के निर्माण में पूरी–पूरी समानता होती है। फिर भिन्न–भिन्न मंजिलों के फ्लैटों में रहने वाले लोगों को परस्पर विरोधी फल क्यों मिलता है? इस प्रश्न का उत्तर भी वास्तुशास्त्र के माध्यम से नहीं दिया जा सकता। इसका कारण यह है कि यह शास्त्र वंशानुक्रम एवं काल इन दोनों का विचार नहीं करता। जबकि ज्योतिषशास्त्र इन दोनों का भी विचार करता है। इसलिए ज्योतिष के द्वारा इस प्रश्न का सही एवं सटीक उत्तर मिल सकता है।

वास्तुशास्त्र की इन कमियों या सीमाओं की ओर ध्यान खींचने का तात्पर्य यह नहीं कि यह शास्त्र व्यर्थ या अनुपयोगी है। इन सब बातें का विचार करने का अभिप्राय यह है कि किसी शास्त्र के बारे में चर्चा करते समय उसके सभी पक्षों को जान लेना चाहिए। प्रत्येक शास्त्र में अपनी कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं, उसकी अपनी दृष्टि होती है, उसकी जन–जीवन में उपयोगिता होती है, तो उसमें कुछ न्यूनताएँ भी होती है।

वस्तुतः इस संसार में ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं, जो समग्र या परिपूर्ण हो। यदि कोई एक शास्त्र समग्र या परिपूर्ण होता, तो अन्य शास्त्रों की रचना ही नहीं होती। वस्तुतः मिभन–भिन्न विषयों पर ही नहीं एक विषय पर भी अनेक शास्त्रों की रचना इस बात का साक्ष्य है, कि कोई भी शास्त्र समग्र या परिपूर्ण नहीं होता। उदाहरणार्थ– आत्मा एवं ब्रह्म का प्रतिपादन करने के लिए अनेक दर्शनशास्त्रों का होना तथा रोग

एवं उनकी चिकित्सा के लिए अनेक चिकित्सा शास्त्रों का होना इसके प्रमाण है।

आज कतिपय आधुनिक वास्तुशास्त्री पता नहीं क्यों वास्तुशास्त्र को स्वीकार करते हुए ज्योतिष शास्त्र को ही नकारने लगे हैं।[७] वस्तुतः यह प्रवृत्ति तथ्य और तर्क से परे हैं। क्योंकि इन शास्त्रों में अंग–अंगीभाव जैसा अटूट सम्बन्ध है और ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए यदि जीवन के घटनाक्रम का विचार, जीवन की समस्या एवं संकटों की व्याख्या और उनके कारण एवं निराकरण का सही–सही ज्ञान करना हो तो वास्तु शास्त्र के साथ–साथ ज्योतिषशास्त्र की सहायता लेनी चाहिए। अन्यथा सीमित एवं एक पक्षीय जानकारी के कारण अनेक समस्याऐं अपने समाधान की ओर मुँह ताकती रह जायेंगी।

यदि वास्तु का विचार करते समय ज्योतिष का विचार न किया जाय, तो शिलान्यास, गेहारम्भ, द्वारस्थापना एवं गृह प्रवेश के मुहूर्तों की जानकारी नहीं हो सकती। इसके अलावा किस व्यक्ति को भूमि एवं भवन का सुख मिलेगा? और किसको नहीं मिलेगा? कौन नया घर या बंगला खरीदेगा? और कौन पैतृक जायदाद को भी बेच देगा? तथा कौन कब नया मकान बनायेगा? या बेच देगा? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं– जिनका विचार एवं समुचित उत्तर ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही मिल सकता है।

अतः वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से पूर्व इन दोनों शास्त्रों के आपसी सम्बन्ध, विचार क्षेत्र, सीमाऐं एवं जीवन के घटना–चक्र के बारे में इनकी दृष्टियों की जानकारी कर लेनी चाहिए, तभी भूखण्ड के चयन, भवन निर्माण और उसमें रहनेवाले लोगों के जीवन में सन्तुष्टि का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

वस्तुतः वास्तुशास्त्र भारतीयज्योतिष की एक शाखा है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इनमें किसी प्रकार का अन्तर्विरोध नहीं है। ये दोनों जीवन के घटनाचक्र को अनुकूल बनाने के लिए हमें तथ्यमूलक जानकारी देते हैं।

---

७. देखिए– वास्तुसन्देश– गौरु तिरुपतिरेड्डि(१९९९)पृ.–२९

भूमि एवं भवन का सुख मिलेगा या नहीं

व्यक्ति को अपने जीवन में भूमि एवं भवन का सुख मिलेगा या नहीं? इस प्रश्न का फलित ज्योतिष के जातक ग्रन्थों में विस्तार से विचार किया गया है। जातक ग्रन्थों में इसका निश्चय करने के लिए अनेक योगों का वर्णन मिलता है, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण योग इस प्रकार है–

भूमि-भवन का सुख न मिलने के योग

१. यदि चतुर्थेश नीच राशि या शत्रुराशि में कालाग्नि, शूल अथवा अन्तक के षष्ट्यंश में हो।[८]

२. यदि चतुर्थेश निर्बल हो और पापग्रहों से युत–दृष्टि हो।[९]

३. यदि चतुर्थेश एवं लग्नेश परस्पर एक दूसरे के शत्रु हों।[१०]

४. चतुर्थस्थान में दो या अधिक पापग्रह हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[११]

५. चतुर्थभाव में शनि हो और चतुर्थेश त्रिक स्थान में हो।[१२]

६. चतुर्थेश अष्टम में और षष्ठेश चतुर्थभाव में हो।[१३]

७. द्वितीयेश, चतुर्थेश एवं द्वादशेश त्रिक भावों में हों।[१४]

८. दशमेश पापग्रह के साथ चतुर्थ भाव में हों।[१५]

९. दशमेश एवं अष्टमेश दोनों साथ–साथ हों और दशमेश क्रूरांशक या मृत्युकर षष्ठयंश में हो।[१६]

१०. यदि चतुर्थेश एवं मंगल नीचस्थ, पापयुक्त, पापदृष्ट या पाप मध्यस्थ हो।[१७]

११. यदि चतुर्थेश द्वितीय भाव में स्थित हो और निर्बल या पापाक्रान्त हो।[१८]

१२. चतुर्थस्थ पापग्रह की दशा अन्तर्दशा हो।[१९]

१३. शनि, मंगल या गुलिक से युत चतुर्थेश की दशा अन्तर्दशा हो।[२०]

१४. त्रिकभाव में स्थित चतुर्थेश की दशा अर्न्तदशा हो।[२१]

८–१६ देखिए– जातक पारिजात– तृतीयचतुर्थभावफलाध्याय

१७–१८ ज्योतिष रत्नाकर–पृ.–३३४

१९–२१ जातक पारिजात–तृतीयचतुर्थभावफलाध्याय

भूमि–भवन प्राप्ति के योग

१. चतुर्थभाव में शुभग्रह हो चतुर्थेश, शुभग्रह के साथ हो और उसका कारक शुभ स्थान में हो।[२२]

२. चतुर्थेश बलवान् हो और लग्नेश से उसकी मित्रता हो।[२३]

३. केन्द्र एवं त्रिकोण में बलवान ग्रह हो और चतुर्थेश उपचय स्थान में हो।[२४]

४. तृतीयभाव में शुभग्रह हो और चतुर्थेश बलवान हो।[२५]

५. चतुर्थेश लग्न या त्रिकोण में शुभग्रहों के साथ हो।[२६]

६. चतुर्थेश द्वादश स्थान में बलवान हो तो पुराना मकान मिलता है।[२७]

७. चतुर्थ कारक त्रिकोण में और चतुर्थेश पारावत गोपुरादि में हो तो बंगला या प्रासाद मिलता है।[२८]

८. तृतीय में शुभग्रह हों चतुर्थेश एवं लग्नेश बली हों, तो विस्तृत एवं भव्य मकान होता है।[२९]

९. चतुर्थेश पारावतांश या गोपुरांश में हो और उसपर चन्द्रमा एवं गुरु की दृष्टि हो, तो भव्य भवन होता है।[३०]

१०. चतुर्थ भाव पर चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र में से दो ग्रहों की दृष्टि हो और वे पाप ग्रह न हों।

११. चतुर्थभाव एवं कारक शुभग्रहों से युत–दृष्ट हो।

१२. कारकांश कुण्डली में चतुर्थभाव में चन्द्रमा एवं शुक्र अथवा उच्च राशिगत ग्रह हो।

१३. कारकांश कुण्डली में चतुर्थभाव में सूर्य हो तो घास–फूस की झोपड़ी या पर्णकुटी मिलती है।

१४. कारकांश कुण्डली में चतुर्थभाव में गुरु हो, तो लकड़ी का मकान होता है।

२२–३० जातक पारिजात–तृतीयचतुर्थभावफलाध्याय

१५. कारकांश कुण्डली में चतुर्थ भाव में बुध हो तो साधारण मकान या फ्लैट मिलता है।

१६. चतुर्थ भाव बुध से युत—दृष्ट हो और चतुर्थेश बलवान हो, तो भवन आलीशान होता है।

१७. कारकांश कुण्डली में चतुर्थभाव में शुभदृष्ट शनि हो, तो लोहा—सीमेन्ट से बना पक्का मकान होता है।

१८. लग्नेश चतुर्थ में और चतुर्थेश लग्न में हो और दोनों बलवान हों, तो अच्छा मकान होता है।

१९. चतुर्थेश एवं पंचमेश, चतुर्थेश एवं नवमेश या चतुर्थेश एवं एकादशेश में परिवर्तन योग हो तो अच्छा मकान होता है।

२०. द्वितीयेश एवं एकादशेश चतुर्थ में और चतुर्थेश दशम में हो तो, भूमि/भवन से लाभ होता है।

२१. लग्नेश एवं चतुर्थेश दोनों साथ—साथ केन्द्र में शुभ दृष्ट हो।

२२. लग्नेश, द्वितीयेश एवं चतुर्थेश जितने शुभ ग्रहों से दृष्ट हो उतने मकान मिलते हैं।

२३. चन्द्रमा की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा में भूमि भवन का लाभ होता है।

२४. मंगल की दशा और शुक्र की अन्तर्दशा में भूमि/भवन का लाभ होता है।

२५. मंगल दशा में उच्च, मूलत्रिकोण या स्वराशिगत शुक्र की भुक्ति में मन्दिर, धर्मशाला बनाने का अवसर मिलता है।

२६. गुरु उच्च, मूलत्रिकोण या स्वराशि में हो और चतुर्थेश से सम्बन्ध हो, तो उसकी दशाभुक्ति में मकान बनता है।

२७. ऐसे गुरु की दशा में मंगल की भुक्ति में मकान बनता है।

२८. ऐसे गुरु की दशा में शनि की अन्तर्दशा में पुराना मकान मिलता है या उसका जीर्णोद्धार होता है।

२९. ऐसे गुरु की दशा में बलवान शुक्र की अन्तर्दशा में होटल, रेस्ट्राँ, गेस्टहाउस, सिनेमा या रिसोर्ट का निर्माण होता है।

३०. बलवान् शुक्र की दशा में एवं शुभदृष्ट चतुर्थेश की अन्तर्दशा में होटल, रेस्टोरेन्ट, रिसार्ट या गेस्ट हाउस बनता है।

३१. चतुर्थेश शुक्र की दशा में बुध या चन्द्रमा की भुक्ति में फार्म या फार्महाउस बनता है।

३२. चतुर्थेश, चतुर्थकारक एवं मंगल की दशा–अन्तर्दशा में मकान बनता है। इन योगों के माध्यम से किस व्यक्ति को मकान और मकान का सुख मिलेगा या नहीं? इसका विचार किया जा सकता है। वस्तुतः सुखशब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। मकान में रहने वाले परिवार के सदस्यों को शारीरिक, मानसिक, व्यावसायिक, सामाजिक या अन्यान्य कष्ट उनके सुख को छिन्न–भिन्न कर देते हैं। इन सभी प्रकार के कष्टों और उनके परिणामों का विचार ज्योतिष शास्त्र द्वारा योग दशा एवं गोचर के आधार पर किया जा सकता है।

वास्तुशास्त्र का क्षेत्र एवं हमारा लक्ष्य

वास्तुशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आवास के लिये, व्यवसाय के लिए धार्मिक या सामाजिक कार्य के लिए, किसी भी प्रकार के भवन का निर्माण हो, वह चाहे ऋषियों, मुनियों के आश्रमों की पर्णकुटियाँ हों, राजमहल या मन्दिर हो, सामान्य जनता के मकान या बहुमंजिलें फ्लैट हों, होटल, रेस्ट्रां, रेसार्ट, गेस्ट हाउस, धर्मशाला हों, दुकान, शोरूम या कार्यालयीय इकाइयां हों– इन सब के निर्माण की

मूल संकल्पना एवं आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन वास्तुशास्त्र में किया जाता है। इस शास्त्र का लक्ष्य है कि निर्मित भवन में रहनेवाले या उपयोग करने वाले लोगों को रहने और काम करने में पूरी–पूरी सुविधा तथा सुरक्षा मिल सके।

इस विषय में कुछ विद्वानों का कहना है , कि निर्मित भवन में एक व्यक्ति को सुख, सुविधा एवं सम्मान मिलता है और उसके वंशजों को दुःख, असुविधा एवं अपमान मिलता है, जैसे चित्तौड़गढ़ के किले में राणा कुम्भा एवं राणा प्रताप के साथ हुआ था या दिल्ली के लाल किले में शाहजहाँ, मुहम्मदशाह रंगीला और बहादुरशाह जफ़र के साथ हुआ। इसका कारण क्या है? इसी प्रकार बहुमंजिले भवन के फ्लैटों में रहने वाले परिवारों में से एक को सुख–सुविधा और दुसरे को दुःख एवं असुविधा क्यों मिलती है? इन और इसी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर वास्तुशास्त्र से कैसे मिल सकते है?

इस विषय में निष्पक्ष विचार एवं निर्णय करने से पूर्व यह जान लेना चाहिए, कि प्रत्येक शास्त्र जीवन के समस्त पक्षों या पहलुओं का विचार नहीं करता। इसलिए एक ही शास्त्र से सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सकता। वस्तुतः वास्तुशास्त्र की एक सीमा या मर्यादा है, कि वह भूमि एवं भवन के शुभाशुभत्व का वातावरण की कसौटी पर विचार करता है। किन्तु यह शास्त्र काल या कर्म की कसौटी पर विचार नहीं करता।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र वंशानुक्रम, वातावरण, कर्म एवं काल– इन चारों के आधार पर जीवन के घटनाक्रम का विचार करता है। अतः एक भवन में रहने वाले विभिन्न पीढ़ियों के लोगों के जीवन के घटनाक्रम का विचार हो या बहुमंजिले फ्लैटों में रहनेवाले लोगों के जीवन के घटनाचक्र का विचार हो– इन सब का विचार एवं समाधान भारतीय ज्योतिष शास्त्र के द्वारा किया जा सकता है।

वस्तुतः वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र की एक शाखा है और ये दोनों एक

दूसरे के पूरक है। इसलिए इस अध्ययन में वास्तुशास्त्र के माध्यम से भूमि का चयन एवं भवन निर्माण के नियमों/उपनियमों पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला जायेगा– जिनसे मनुष्य को अपने जीवन में अधिकतम सुविधा,सुरक्षा एवं संतुष्टि मिल सके। और जहाँ आवश्यक होगा, वहाँ इसके लिए ज्योतिषशास्त्र की सहायता ली जाएगी।

हमारा लक्ष्य है कि मुख्य रूप से वास्तुशास्त्र और आवश्यकता होने पर ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से तन, मन एवं जीवन को स्वत: स्फूर्त करने वाले भूमि एवं भवन निर्माण के नियमों से पाठक को परिचित कराना है। ताकि वे अपने और अपने परिचित लोगों को इसका लाभ उठाने में उनकी सहायता एवं मार्गदर्शन कर सकें।

अध्याय – द्वितीय

43 - 84

- भूमि की गुणवत्ता
- भूमि के दोष
- प्रशस्त भूमि
- भूमि परीक्षण
- भूमि का ढ़लान
- आठ वीथियों
- गजपृष्ठ आदि वीथियाँ
- भूखण्ड के आस पास का क्षेत्र
- भूखण्डों के आकार
- भूखण्ड का विस्तार
- भूखण्ड का कटाव
- भूखण्ड के समीपवर्ती मार्ग
- भूखण्ड के कोनों की माप एवं गोलाई
- वेध शूल (दोष)
- कोणों में स्थित भूखण्ड
- भूखण्डों की श्रेणियां
  - (i) उच्च श्रेणी के भूखण्ड
  - (ii) मध्यम श्रेणी के भूखण्ड
  - (iiii) साधारण श्रेणी के भूखण्ड
  - (iv) निम्न श्रेणी के भूखण्ड
- शाल्योद्धार

अध्याय द्वितीय

भूमि की गुणवत्ता

भवन निर्माण के लिए भूमि का चयन करते समय भूमि या मिट्टी की गुणवत्ता का विचार कर लेना चाहिए। जहाँ दोष रहित, चिकनी एवं ठोस मिट्टी हो वहाँ उचित आकार के भूखण्ड पर भवन बनाना चाहिए।

मिट्टी के गुण–दोषों का विचार उसके रंग, गन्ध एवं स्वाद आदि के अनुसार किया जाता है। वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के लिए भूमि को इन आधारों पर चार श्रेणियों में बाँटा गया है–

१. ब्राह्मणी

यह सफेद रंग की, कुशा युक्त, मधुर स्वाद एवं सुगन्धित मिट्टी वाली होती है। यह ब्राह्मणी भूमि सबसे अच्छी तथा शुभ मानी जाती है। प्राचीन वास्तुग्रन्थों में यह सब प्रकार के सुखों को देनी वाली बतलायी गयी है।[३१] यह भूमि ब्राह्मण, बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक लोगों को निवास के लिए श्रेष्ठ मानी गयी है।

२. क्षत्रीया

इसकी मिट्टी लालरंग की होती है, जिसमें रक्त जैसी गन्ध होती है। इसका कसैला स्वाद होता है और इस पर शर (मूंज) आदि उगते हैं। यह क्षत्रिय एवं शासक वर्ग के आवास के लिए प्रशस्त मानी गयी है।[३२] यह ज्ञान, बल, सम्मान एवं राज्य देने वाली बतलायी गयी है। इस भूमि पर शासक मन्त्री, राज्याधिकारी, राजनेता, सेना, पुलिस एवं प्रशासन के उच्चाधिकारियों के आवास तथा कार्यालय बनाना शुभ माना जाता है।

---

३१. ब्राह्मणी सर्वसुखदा, बृ.वाव.मा. श्लो.–३२

३२. ब्राह्मणी सर्वसुखदा, बृ.वाव.मा. श्लो.–३२

३. वैश्या

इस भूमि का रंग हरीतिमा लिए हुए या पीला होता है। इसमें अन्न जैसी गन्ध होती है और इसका स्वाद कुछ खट्टा होता है। इस मिट्टी में कुश एवं कास उगते हैं। यह मिट्टी उपजाऊ होती है और खेती–बड़ी, फार्म एवं फार्म हाउसों के लिए प्रशस्त होती हैं। यह भूमि व्यापारियों, व्यावसायियों (प्रोफेशनलों), दुकान, शोरूम, व्यावसायिक संस्थानों, बैंकों, उद्योगों एवं व्यवसायिक केन्द्रों के लिए अच्छी होती है। प्राचीन वास्तु ग्रन्थों में इस भूमि को धन–धान्यदायक माना गया है।[३३]

४. शूद्रा

इस भूमि का रंग काला होता है। इसकी मिट्टी में सडाँध या दुर्गन्ध अथवा मदिरा जैसी गन्ध होती है। इसका स्वाद कड़वा होता है और इसमें सब तरह की घास उगती है। यह भूमि अच्छी नहीं मानी जाती।[३४] प्रायः हमारे देश के सभी महानगरों की झोपड़ी–पट्टियाँ ऐसी ही भूमि पर बनी है।

भूमि के दोष

आवास एवं व्यवसाय के लिए भवन निमाणार्थ भूमि की मिट्टी का मुख्य गुण उसका चिकनापन एवं ठोस होना। इसके विपरीत जो मिट्टी रेतीली या पोली हो, उस पर भवन नहीं बनना चाहिए। प्राचीन वास्तु ग्रन्थों में कहा गया है कि जिस भूमि में दरारें हों, पोली हो, चीटियों या दीमक के बिल हों, कब्रिस्तान हो, शल्य हो, दलदल हो, बहुत ऊँची–नीची हो– ऐसी भूमि पर भूलकर भी मकान नहीं बनाना चाहिए।[३५]

---

३३. धनधान्यकरीवैश्या– बृ.वाव.मा. श्लो.–३२

३४. शूद्रा तु निन्दिता स्मृता– बृ.वाव.मा. श्लो.–३२

३५. स्फुटिता च सशल्या च वाल्मीकाऽरोहिणी तथा।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा।।

प्रशस्त भूमि

भवन निर्माण के लिए प्रशस्त भूमि का विवेचन करते हुए आचार्य वराह मिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में बतलाया है, कि जिस भूमि की मिट्टी में अच्छी औषधि, वृक्ष एवं लताएँ उगती हों, जिसकी मिट्टी मधुर, चिकनी, सुगन्धित एवं समतल हों और जिस भूमि पर थके–हारे व्यक्ति को बैठने से शान्ति मिले– ऐसी भूमि पर मकान बनाना चाहिए।[३६]

वस्तुत: भवन निर्माण के लिए वह भूमि अच्छी होती है, जिसकी मिट्टी उपजाऊ, चिकनी, ठोस, सुगन्धित एवं समतल हो। ऊँची–नीची खार–खड्ड़े वाली, रेतीली या पोली मिट्टीवाली भूमि पर क़भी भी मकान नहीं बनाना चाहिए।

भूमि परीक्षण

जिस भूखण्ड पर भवन निर्माण करना हो, वहाँ की मिट्टी ठोस है या नहीं? इस बात की भली–भाँति जाँच कर लेनी चाहिए। प्राचीन वास्तु ग्रन्थों में मिट्टी के घनत्व का परीक्षण करने की अनेक विधियाँ बतलाई गयी है, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण एवं सरलविधियाँ इस प्रकार हैं–

१. विश्वकर्माप्रकाश में बतलाया गया है कि भूस्वामी के हाथ की नाप से भू–खण्ड के बीच में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढ़ा खोदकर उसको मिट्टी से भर देना चाहिए। यदि गड़ढ़ें को अच्छी तरह भरने के बाद भी मिट्टी बच जाय, तो वह भूमि घर बनाने के लिए उत्तम होती है। यदि उस मिट्टी से गड्ढ़ा भर जाय और मिट्टी न बचे तो भूमि मध्यम होती है। और यदि गड्ढ़ा भरने में मिट्टी कम पड़ जाय तो उस भूमि पर भवन निर्माण नहीं करना चाहिए।[३७]

---

३६. शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा,स्निग्धा समानसुखदा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुप्यगतानां, धन्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।
बृहत्संहिता–वास्तुब्धिाध्याय।

३७. खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभोरजोवर्द्धने।

२. विश्वकर्मा प्रकाश एवं वास्तुरत्न में भूमि के घनत्व के परीक्षण की एक अन्यविधि इस प्रकार बतलायी गयी है– भूमि के स्वामी के हाथ की माप से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे पानी से लबालब भर देना चाहिए। फिर धीरे–धीरे १०० हाथ तक जाकर पुन: गड्ढे के पास आकर परीक्षा करनी चाहिए। यदि इतने समय में गड्ढे में पानी लबालब भरा हो, तो भूमि मकान बनाने के लिए उत्तम होती है। यदि गड्ढे में एक चौथाई जल कम हुआ हो तो भूमि मध्यम और यदि गड्ढे में पानी आधा या उससे कम हो तो वह भूमि घर बनाने के लिए अच्छी नहीं होती।[३८]

३. आचार्य नारायण भट्ट ने वास्तुरत्नावली में भूमिपरीक्षण की विधि इस प्रकार बतलायी है– जिस भूखण्ड में मकान बनाना हो उसके बीच में एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा सायंकाल खोदकर उसमें पानी भर देना चाहिए। फिर प्रात: काल के समय यदि उस गड्ढे में कुछ पानी बचे, तो वह भूमि मकान बनाने के लिए अच्छी होती है। यदि गड्ढे में गीली–गीली मिट्टी हो, तो भूमि मध्यम होती है. और यदि गड्ढे में पानी न हो और दरारें हों, तो भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए।[३९]

४. बृहद्वास्तुमाला में बतलाया गया है कि भूमि परीक्षण के लिए कुछ गहराई तक उसकी खुदाई करनी चाहिए। यदि खुदाई में चींटी एवं दीमक के बिल, अजगर, साँप, भूसा, हड्डी, कपड़े, राख, कौड़ी, रुई, जली

---

३८. तत्कृत्वा जलपूर्णमाऽशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुन:।
पादोनाऽर्धविहीनकेऽथनिमृते मध्याधमेष्टाम्बुभि:।। विश्वकर्माप्रकाश

३९. श्वभ्रं हस्तमितं रवनेदिह जलं पूर्ण निशास्ये न्यसेत्।
प्रातर्हष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसरस्फाटितम्।।

लकड़ी, खोपड़ी, खप्पर या लोहा निकले तो वहाँ मकान नहीं बनाना चाहिए।[४०]

५. जिस भू–खण्ड पर खड़े होते ही मन को और आँखों को तृप्ति एवं संतोष मिलता हो– वहाँ मकान बनाना चाहिए– ऐसा गर्ग आदि ऋषियों का मत है।[४१]

इस प्रकार पूर्वोक्त चार विधियों से मिट्टी के घनत्त्व की परीक्षा और पाँचवीं विधि से भूखण्ड के वातावरण की परीक्षा की जा सकती है। वस्तुत: भवन का आधार भूमि है। वह जितनी ठोस होगी उस पर बना भवन भी उतना ही स्थायी होगा। अत: मकान बनाने से पहिले भूमि की परीक्षा कर लेना आवश्यक है।

यदि भूमि का परीक्षण करते समय उसका घनत्व सही न हो, भूमि रेतीली हो या उसमें चींटी–दीमक की पोल हो या भूषा, राख, हड्डी अथवा रुई आदि हो, तो उस भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए। अथवा उसकी पर्याप्त खुदाई कर[४२] उसमें से अनपेक्षित चीजों को निकाल कर पत्थर के टुकड़ों और चिकनी मिट्टी से भर कर फिर मकान बनाना चाहिए।

---

४०. पिपीलिकाषोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र कर्ता।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदा: स्यु:।।
पराटिका दु:ख कलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति दु:खम्।
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोगभीति वास्तु प्रवदन्ति धीरा:।।
—बृहद्वास्तुमाला श्लो.११४–१५

४१. मनस श्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।
—बृहद्वास्तुमाला श्लो. ९३

४२. जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा।
—बृहद्वास्तुमाला श्लो.१०३

भूमि का ढ़लान

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूखण्ड की भूमि का ढ़लान पूर्व एवं उत्तर की ओर हों तो शुभ, तथा पश्चिम एवं दक्षिण की ओर ढ़लान हो तो अशुभ होता है। तात्पर्य यह है कि जिस भूमि का ढ़लान पूर्व की ओर हो, वह विकास एवं वृद्धिदायक होती है। जिसका ढ़लान उत्तर की ओर हो वह धन—धान्य देती है। जिसका ढ़लान पश्चिम को हो वह धननाशक और जिसका ढ़लान दक्षिण की ओर हो वह व्याधि एवं मृत्युदायक होती है।[४३]

भवन निर्माण के लिए प्लाट का चुनाव करते समय विभिन्न दिशाओं और कोणों में उसके ढ़लान के अनुसार उस भूखण्ड में बने मकान के निवासियों का रुझान प्रभावित होता है। इस विषय में वास्तुविद्या में चारों दिशाओं तथा चारों कोणों में भूखण्ड की ऊँचाई—नीचाई के अनुसार ''गोवीथी'' आदि आठ विथियों की कल्पना कर उनके शुभाशुभत्व का विचार किया गया है[४४], यथा—

जो भूमि ईशान कोण में ऊँची और नैऋत्य में नीची हो वह भूतवीथि कहलाती है। जो भूमि अग्निकोण में ऊँची और वायव्य में नीची हो, वह नागवीथि कही जाती है। जो भूमि वायव्य में ऊँची और अग्नि कोण में नीची हो वह वैश्वानरी कहलाती है तथा जो भूमि नैऋत्य में ऊँची और ईशान कोण में नीची हो वह धनवीथि कहलाती है।

---

४३. पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरी विन्द्यात् पश्चिमप्लवना ततः।।
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत्।।
—वास्तुविद्या

४४. पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरी विन्द्यात् पश्चिमप्लवना ततः।।
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत्।।
—वास्तुविद्या

आठ वीथियाँ

वीथिनाम	दिशा—जिसमें ऊँची है	दिशा— जिसमें नीची है	फल
गोवीथि	पश्चिम	पूर्व	शुभ
जलवीथि	पूर्व	पश्चिम	अशुभ
यमवीथि	उत्तर	दक्षिण	अशुभ
गजवीथि	दक्षिण	उत्तर	शुभ
भूतवीथि	ईशानकोण	नैऋत्यकोण	अशुभ
नागवीथि	अग्निकोण	वायव्यकोण	अशुभ
वैश्वानरी	वायव्यकोण	अग्नि कोण	शुभ
धन वीथि	नैऋत्यकोण	ईशान कोण	शुभ

वास्तुशास्त्र के अनुसार विभिन्न दिशा और कोणों में ऊँची तथा नीची (ढालू) भूमि का फल इस प्रकार है—

ऊँचाई का फल

ऊँचाई की दिशा/कोण	फल
पूर्व	सन्तान को हानि
दक्षिण	धन वृद्धि
पश्चिम	धन एवं यश की वृद्धि
उत्तर	दरिद्रता, कष्ट
आग्नेय	(१) वायव्य व ईशान से ऊंची हो तो शुभ

	(२) अन्यथा अशुभ
नैऋत्य	सुख शान्ति
वायव्य	(१) ईशान से ऊंची हो तो शुभ
	(२) अन्यथा अशुभ
ईशान	चिन्ता धन हानि
मध्य भाग	समृद्धि एवं ऐश्वर्य

तात्पर्य यह है कि जिस भूखण्ड पर घर बनाना हो उसमें नैऋत्य कोण सबसे ऊंचा और ईशान कोण सबसे नीचा होना चाहिए। वायव्य कोण ईशान कोण से ऊंचा तथा आग्नेय कोण वायव्य से ऊंचा होना चाहिए। ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से जीवन में प्रगति एवं समृद्धि होती है।

नीचाई (ढलान) का फल[४५]

नीचाई की दिशा/कोण	फल
पूर्व	सुख, समृद्धि
दक्षिण	व्याधि, भय
उत्तर	मंगल कारक
पश्चिम	धन हानि, रोग
अग्निकोण	(१) यदि नैऋत्य से नीची हो तो शुभ
	(२) अन्यथा अशुभ
नैऋत्य	व्यसन, व्याधि
वायव्य	(१) नैऋत्य एवं आग्नेय से नीची, तो शुभ

४५. श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभ्ज्ञं च मिद्यालाभं क्रमेण च।।
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा महीनेष्टा न शुभाप्लवतत्परा।। —नारद

	(२) अन्यथा अशुभ
ईशान	सुख, शान्ति
मध्य	अनिष्टकारी

गजपृष्ठ आदि भूमियाँ

भूखण्ड की जमीन की विभिन्न दिशाओं और कोणों में ऊंचाई के आधार पर उस भूमि को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है – १. गजपृष्ठ भूमि, २. कूर्म पृष्ठ भूमि, ३. दैत्यपृष्ठ भूमि एवं ४. नागपृष्ठ भूमि। इनका लक्षण एवं फल इस प्रकार हैं।[४६]

भूमि	ऊंचाई–निचाई–दिशा	फल
गजपृष्ठ	दक्षिण पश्चिम, नैऋत्य एवं वायव्य में ऊंची	धनलाभ, आयुवृद्धि
कूर्मपृष्ठ	मध्य में ऊंची और चारों ओर नीची	उत्साह, धनवृद्धि
दैत्य पृष्ठ	पूर्व, ईशान एवं आग्नेय में ऊंची तथा पश्चिम में नीची	धन, पुत्र एवं पशुओं की हानि
नागपृष्ठ	पूर्व–पश्चिम की ओर लम्बी, उत्तर दक्षिण में ऊंची और मध्य में नीची	पत्नी हानि, पुत्र हानि एवं शत्रुवृद्धि

भूखण्ड के आस-पास का क्षेत्र

जिस भूखण्ड पर निर्माण करना हो, उसके आस–पास के क्षेत्र में स्थित अन्य भवन, पेड़, नदी जलाशय, सड़क, पहाड़ एवं टीले आदि का विचार कर लेना चाहिए। क्योंकि इनका वातावरण पर और उसके माध्यम से वहां रहने वाले लोगों के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इस विषय में शुभाशुभत्व के निर्णायक कुछ प्रमुख–सूत्र इस प्रकार हैं।

---

४६. देखिए– बृहद्वास्तुमाला श्लो. ८२–८९

(१) अपने प्लाट के पूर्व एवं उत्तर में स्थित अन्य भूखण्ड या सड़क का तल दक्षिण एवं पश्चिम से नीचा होना शुभ होता है।

(२) भूखण्ड के दक्षिण या पश्चिम में ऊंचे भवन, पहाड़िया, टीले या पेड़ आदि हो, तो शुभ माने जाते है। जबकि उत्तर या पूर्व की ओर इनका होना अशुभ होता है।

(३) भूखण्ड से पूर्व या उत्तर की ओर कोई नदी, नहर या नाला हो, जिसका प्रवाह दक्षिण से उत्तर या पश्चिम से पूर्व हो, तो शुभ होता है।

(४) प्लाट से दक्षिण या पश्चिम में नदी, नहर नाला, तालाब या पोखर आदि जलाशय का होना अशुभ होता है।

(५) भूखण्ड के उत्तर, पूर्व या ईशान कोण में भूमिगत जलस्रोत – कुंआ, तालाब एवं बावड़ी आदि–होना शुभ होता है।

(६) जब कि भूखण्ड के दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य एवं वायव्य में कुँआ आदि का होना अशुभ होता है।

(७) भूखण्ड के आस–पास श्मशान, कब्रिस्तान, मकबरा या समाधि होना अशुभ होता है।

(८) भूखण्ड के आस–पास सरकारी कार्यालय, विद्यालय, धर्मशाला, सिनेमा हाल एवं बड़ा मन्दिर–जो भूखण्ड पर धूप एवं हवा के आवागमन में अवरोधक हो– अशुभ होता है। किंतु व्यापारिक भवन के लिए यह अच्छा होता है।

(९) जिस प्लाट पर आसपास वाले घरों का विसर्जित पानी या वर्षा का जल आता है वहां मकान नहीं बनाना चाहिए।

(१०) भूखण्ड में बॉवी, बिल, मधुमक्खी का छत्ता, कौआ या उल्लू के घोंसले आदि हो, तो उन्हें हटाकर ही मकान बनाना चाहिए।

(११) प्लाट के आस–पास बरगद, पीपल, गूलर आदि के ऐसे पेड़ – जिनकी जड़े अपने भूखण्ड तक फैली हों – अशुभ होते हैं।

(१२) यदि भूखण्ड दो बड़े भूखण्डों के बीच हो या आस–पास में झुग्गी–झोपड़ी या झोंपड़ पट्टी हो तो शुभ नहीं होता।

(१३) विधर्मियों के पूजास्थल, अस्पताल, पुलिसथाना, कचहरी, नदी का घाट, रेलवे क्रासिंग, बार या मदिरालय के पास वाला भूखण्ड मकान बनाने के योग्य नहीं होता।

(१४) जिस भूखण्ड के आस–पास भीड़–भाड़ या कोलाहाल होता हो, वह शुभ नहीं होता।

(१५) जिस प्लाट के आस–पास का वातावरण देखने में अच्छा लगे और जिससे मन में संतुष्टि हो – वह शुभ होता है।

भूखण्डों के आकार

आज के युग में मकान, मन्दिर, दुकान, होटल, धर्मशाला या फैक्ट्री बनाने के शास्त्र सम्मत या मनचाहे भूखण्ड का मिलना लाटरी लगने के समान है। आजकल आवास विकास परिषद, विकास प्राधिकरण एवं अन्य अरबन डवलपमेन्ट एजेन्सियाँ नगर का मास्टर प्लान तैयार कर उपलब्ध भूमि को सार्वजनिक हित तथा नगर के सुनियोजित विकास के नाम पर प्लाटों के रूप में अपने ढंग से विकसित कर लाटरी या नीलामी आदि के माध्यम से बेचते हैं। इस स्थिति में शास्त्रसम्मत एवं अपनी पसन्द का भूखण्ड मिल जाना एक प्रकार का किस्मत का करिश्मा ही है। अन्यथा जो भूखण्ड मिला है। उस पर ही मकान बनाना आज की मजबूरी है।

ऐसी स्थिति में भूखण्ड के आकार, उसके विस्तार, समीपवर्ती मार्ग एवं वेध आदि का विचार करने के बाद उस पर मकान बनाना श्रेयस्कर होता है।

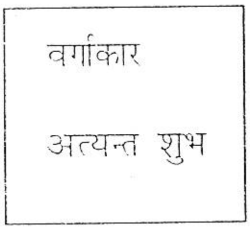
वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के लिए भूखण्डों के आकार पर पर्याप्त विचार किया गया है यथा– आयताकार भूखण्ड अत्यन्त शुभ, वर्गाकार धनदायक, भद्रासन सफलता दायक, वृत्ताकार शुभ, चक्राकार दरिद्रताकारक, विषमबाहु शोकप्रद, त्रिकोणाकार राजभय दायक, शकटाकार निर्धनता दायक, दण्डाकार पशु (वाहन) हानिकारक, मृदंगाकार स्त्रीनाशक, बृहन्मुख (सिंहमुख) बन्धकारक, गोमुख शुभ, व्यञ्जनाकार धननाशक, कूर्मपृष्ठ वधबन्धनकारक, सूर्पभूखण्ड सम्पत्तिनाशक, धनुषाकार चौर भय दायक तथा अर्धचन्द्राकार भूखण्ड क्लेशदायक होती है।

आयताकार भूखण्ड के बारे में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह चन्द्र बेधी एवं सूर्य वेधी दो प्रकार का होता है। पूर्व से पश्चिम में भूखण्ड की जितनी चौड़ाई हो उससे उत्तर–दक्षिण में सवाई चौड़ाई होने पर उस भूखण्ड को चन्द्रवेधी कहते हैं।

तथा उत्तर–दक्षिण में जितनी चौड़ाई हो उससे सवाई चौड़ाई पूर्व–पश्चिम में हो तो उसे सूर्य वेधी कहते हैं। चन्द्रवेधी भूखण्ड शुभ और सूर्यवेधी अशुभ होता है।[४७]

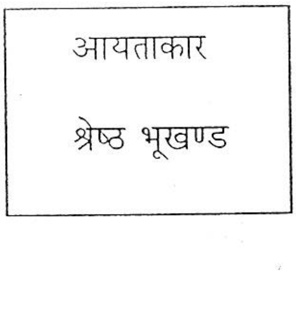
सामान्यतया वर्गाकार एवं आयताकार भूखण्ड शुभ होता है। वृत्ताकार भूखण्ड पर वृत्ताकार निर्माण किया जाय तो शुभ होता है। अण्डाकार भूमि त्यागी एवं तपस्वियों का शुभ होती है। त्रिशूलाकार भूमि वीरों को पैदा करती है। ध्वजाकार भूमि यश एव सम्मान देती है। अन्य आकारों में विषम भुज, तबला, मदग, त्रिभुज, शकट, दण्ड, पखा, कुम्भ एवं मुद्गर के आकार की भूमि आवास के लिए अशुभ होती है।

१. वर्गाकार भूमि



इस प्रकार का भूखण्ड जिसकी चारों भुजाओं की लम्बाई समान हो और प्रत्येक कोण ९० अंश का अर्थात् समकोण हो, वह वर्गाकार कहलाता है। यह भवन निर्माण के लिए श्रेष्ठ होता है।

२. आयताकार



जिस भूखण्ड की आमने–सामने की भुजाओं की लम्बाई समान हो और चारों कोण समकोण हो, वह आयताकार कहलाता है। यहाँ चौड़ाई व लम्बाई का अनुता १:२ से अधिक नहीं होना चाहिए। आयताकार में चन्द्रवेधी भूखण्ड शुभ और सूर्यवेधी अशुभ होता है।

---

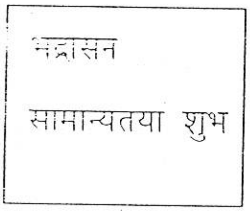
४७. पूर्वपश्चिमतो दैर्ध्यं सवांद दक्षिणोत्तरम्।
शुभावहं चन्द्रविद्धं सूर्यविद्धं न शोभनम्।।

३. वृत्ताकार



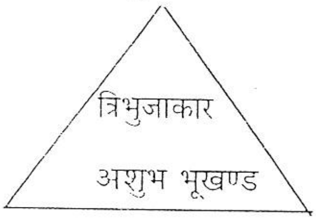
आवास एवं वाणिज्यक कार्यों के लिए वृत्ताकार भूखण्ड श्रेष्ठ होता है, यदि उस पर निर्माण वृत्ताकार में ही किया जाय। यदि इस पर वर्गाकार या आयताकार में निर्माण किया जाय, तो अशुभ होता है।

४. भद्रासन



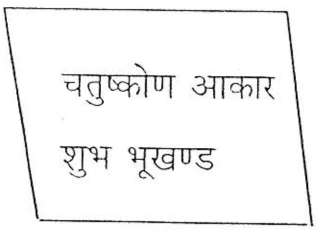
जब वर्गाकार भूखण्ड की लम्बाई चौड़ाई बराबर हो और जिसका मध्यभाग समतल हो, वह भद्रासन कहलाता है। यह भूखण्ड सामान्यतया शुभ होता है।

५. त्रिभुजाकार



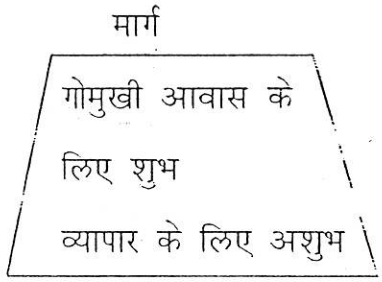
जो भूखण्ड त्रिकोण के आकार का हो वह त्रिकोणाकार या त्रिभुजाकार कहा जाता है। वास्तु की दृष्टि से यह अशुभ होता है।

६. चतुष्कोण आकार



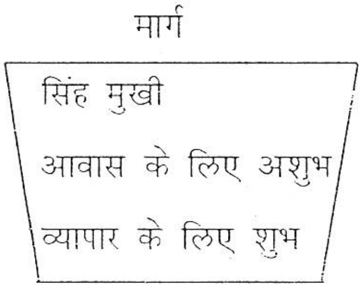
जिस भूखण्ड की आमने–सामने की भुजाओं की लम्बाई समान हो और आमने–सामने के कोण बराबर हों, किन्तु समकोण न हो, वह चतुष्कोण या चतुर्भजाकार कहलाता है। यह भवन निर्माण के लिए शुभ होता है।

७. गोमुखी



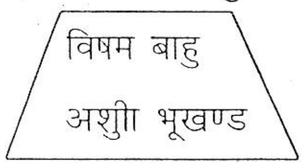
ऐसा चतुर्भुजाकार भूखण्ड जिसकी सड़क की ओर लम्बाई कम और पीछे लम्बाई अधिक हो, गोमुखी कहलाता है। यह आवास के लिए शुभ किन्तु व्यापार के लिए अशुभ होता है।

८. सिंहमुखी / व्याघ्रमुखी



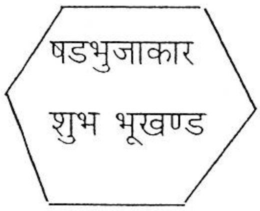
ऐसा चतुर्भुजाकार भूखण्ड जिसकी सड़क की ओर लम्बाई अधिक और पीछे की लम्बाई कम हो, सिंहमुखी या व्याघ्रमुखी कहलाता है। यह आवास के लिए अशुभ किन्तु व्यापार के लिए शुभ होता है।

९. विषम बाहु



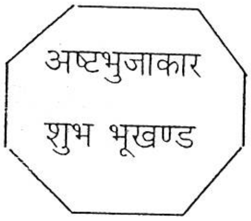
जिस भूखण्ड की चारों भूजाएँ असमान हों, वह विषम बाहु कहलाता है। आवास के लिए यह अशुभ होता है।

१०. षडभुजाकार



छः भुजाओं वाला वह भूखण्ड जिसकी छः भुजाओं की लम्बाई समान हो, षड्भुजाकार कहलाता है। ऐसा भूखण्ड आवास के लिए शुभ होता है।

११. अष्ट भुजाकार



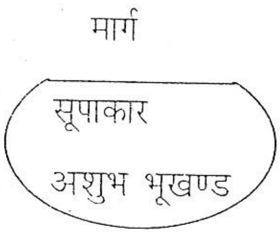
आठ भुजाओं वाला वह भूखण्ड जिसकी आठों भुजाओं की लम्बाई समान हो अष्टभुजाकार कहलाता है। वह आवास के लिए शुभ होता है।

१२. चक्राकार



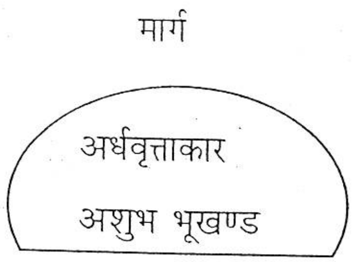
जो भूखण्ड अनेक कोण एवं भुजाओं वाला तथा चक्र के समान आकार वाला हो, वह चक्राकार भूखण्ड कहलाता है। यह आवास के लिए अशुभ किन्तु व्यापार के लिए मध्यम होता है।

१३. सूपाकार



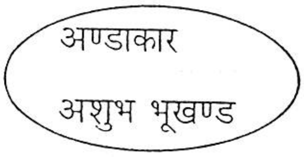
जो भूखण्ड सड़क की ओर सूप और पीछे की ओर अर्ध चन्द्राकार हो वह सूपाकार कहलाता है। भवन निर्माण के लिए यह अशुभ होता है।

१४. अर्ध वृत्ताकार



जो भूखण्ड सड़क की ओर अर्धवृत्त या अर्ध चन्द्राकार हो वह अर्धवृत्ताकार कहलाता है। यह सूपाकार का उलटा होता हैं तथा भवन निर्माण के लिए अशुभ हाता है।

१५. अण्डाकार दीर्घ वृत्ताकार



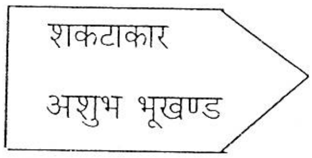
जो भूखण्ड अण्डे के आकार का हो, वह अण्डाकार या दीर्घ वृत्ताकार कहलाता है। यह भवन निर्माण के लिए अशुभ होता है।

१६. मृद्रगाकार



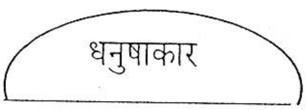
ढ़ोलक, परवावज, मृदंग या तबले जैसे आकार के भूखण्ड को मृदंगाकार कहते हैं। यह भवन निर्माण के लिए अशुभ होता है।

१७. शकटाकार



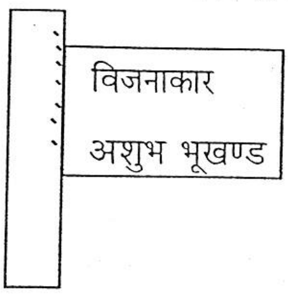
बैलगाड़ी, रथ या ताँगे जैसी आकृति के भूखण्ड को शकटाककार कहते हैं। यह भवन निर्माण एवं आवास के लिए अशुभ होता है।

१८. धनुषाकार



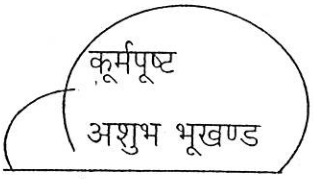
जो भूखण्ड धनुष जैसी आकृति का हो वह धनुषाकार कहलाता है। यह भवन निर्माण एवं आवास के लिए अशुभ होता है।

१९. विजनाकार (पंखे के आकार का)



जो भूखण्ड हाथ से झलने वाले पंखे जैसे आकार का हो वह विजनाकार कहलाता है। यह निवास के लिए अशुभ होता है।

२०. कूर्मपृष्ठाकार



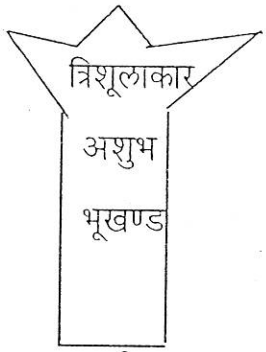
जो भूखण्ड कछुए जैसी आकृति का हो, वह कूर्म पृष्ठाकार कहलाता है। यह व्यापार उद्योग एवं आवास आदि सभी कार्यों के लिए अशुभ होता है।

२१. ताराकार



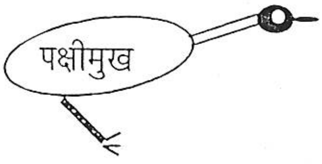
जो भूखण्ड तारे के समान आकार वाला हो वह ताराकार कहलाता है। यह निवास के लिए अशुभ होता है।

२२. त्रिशूलाकार



जो भूखण्ड त्रिशूल के समान आकार वाला हो वह त्रिशूलाकार कहलाता है। यह भवन निर्माण के लिए अशुभ होता है।

२३. पक्षीमुख



जो भूखण्ड पक्षी के मुख के समान आकार वाला हो, वह पक्षीमुख कहलाता है। यह भवन निर्माण के लिए अशुभ होता है।

२४. कुंभाकार



जो भूखण्ड घड़ा, मटका या कलश जैसे आकार वाला हो, वह कुंभकार कहलाता है। यह आवास के लिए अशुभ होता है।

भूखण्ड की आकृतियों के फल

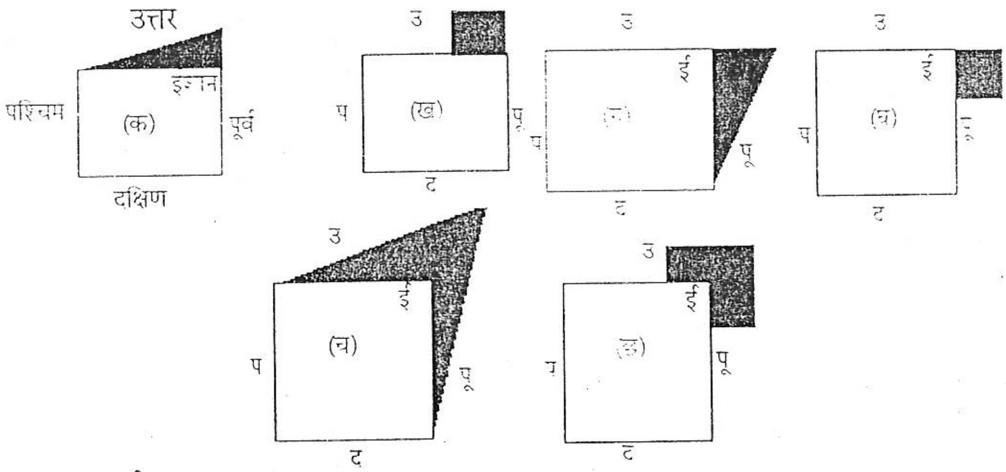
भूखण्ड की आकृति		फल
१.	वर्गाकार	सुख, समृद्धि, परिवार की प्रगति
२.	आयताकार	(i) धनधान्य लाभ, सिद्धि, मंगलकारक
		(ii) किन्तु सूर्य बिद्ध हो तो अशुभ
३.	वृत्ताकार	वृत्ताकार निर्माण करने पर शुभ
४.	भद्रासन	सामान्य शुभ
५.	त्रिभुजाकार	शासकीय कष्ट, राजभय
६.	चतुष्कोण	सुख, धनधान्यलाभ
७.	गोमुखी	आवास के लिए शुभ, व्यापार के लिए अशुभ,
८.	सिंहमुखी	व्यापार के लिए शुभ आवास के लिए अशुभ,
९.	विषमबाहु	दु:ख, अशान्ति, अर्थहानि

१०.	षड्भुजाकार	उन्नति दायक, मंगलकारी
११.	अष्टभुजाकार	सुख, सम्पत्तिदायक
१२.	चक्राकार	निवासी के लिए धननाशक, व्यापार के लिए मध्यम
१३.	सूपाकार/शूर्पाकार	धननाश, अशान्ति
१४.	अर्धवृत्ताकार	विकास में बाधा, चोर भय
१५.	अण्डाकार	हानि, दरिद्रता
१६.	मृदंगाकार	स्त्रीकष्ट, धन हानि
१७.	शकटाकार	अग्निभय, अशान्ति, क्लेश
१८.	धनुषाकार	रोग, शत्रुभय, वंशक्षय
१९.	विजनाकार	मानसिक क्लेश, धनहानि
२०.	कूर्मपृष्ठाकार	क्लेश, बन्धन, मृत्यु
२१.	ताराकार	असफलता, विवाद
२२.	त्रिशूलाकार	अशान्ति, संघर्ष, उत्साह वृद्धि
२३.	पक्षीमुख	हानि, दुर्घटना
२४.	कुंभाकार	रोग, चोट, मानसिक आघात

भूखण्ड का विस्तार

आयताकार एवं वर्गाकार के भूखण्ड भवन निर्माण के लिए शुभ एवं श्रेष्ठ माने जाते हैं। अतः इनके बारे में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि कोई भूखण्ड आयताकार या वर्गाकार न हो, अपितु इसका कोई एक कोण आगे निकला हुआ या अन्दर दबा (कटा) हुआ हो। अथवा कोई व्यक्ति अपने प्लाट मकान के आस–पास की जमीन खरीदकर उसका विस्तार करना चाहता हो, तो इसके शुभाशुभत्व का विचार कर लेना चाहिए।

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूखण्ड के ईशान कोण में उत्तर या पूर्व की ओर विस्तार होना या करना बहुत ही शुभ एवं भाग्यप्रद होता है।



उदाहरणार्थ–

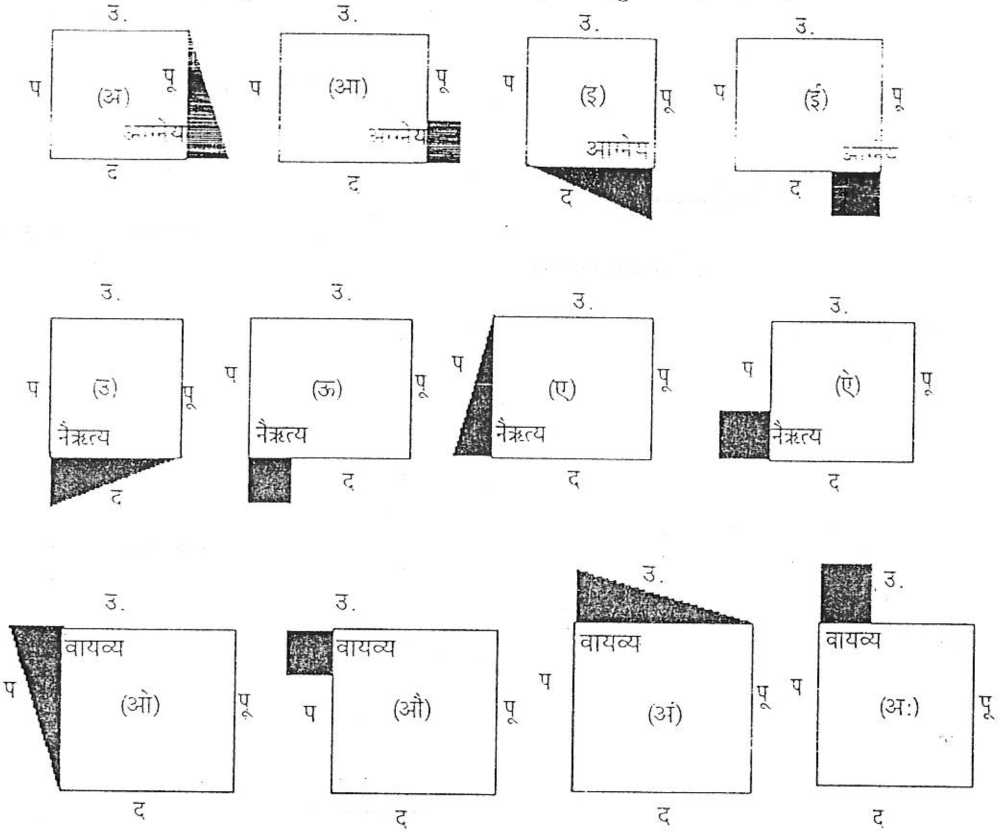
(i) भूखण्ड 'क' एवं ख में ईशान कोण में उत्तर की ओर इस भूखण्ड का विस्तार प्रगति एवं अभिवृद्धि दायक होने के कारण अत्यन्त शुभ है।

(ii) भूखण्ड 'ग' एवं 'घ' में ईशान कोण में पूर्व की ओर इस भूखण्ड का विस्तार सुख एवं समृद्धिदायक होने के कारण शुभ एवं श्रेष्ठ है।

(iii) भूखण्ड 'च' एवं 'छ' में ईशान कोण पर उत्तर एवं पूर्व दोनों ओर इस

भूखण्ड का विस्तार प्रगति एवं समृद्धि दायक होने के कारण पूर्ण रूपेण शुभ है।

किन्तु ईशान कोण के अलावा अग्निकोण, नैऋत्यकोण एवं वायव्यकोणों में किसी भी दिशा में भूखण्ड का विस्तार या बढ़ावा शुभ नहीं होता, यथा—



उदाहरणार्थ—

(i) भूखण्ड 'अ' तथा 'आ' में आग्नेय कोण पर पूर्व दिशा की ओर इस भूखण्ड का विस्तार झगड़े—झंझट पैदा करने वाला होने के कारण अशुभ है।

(ii) भूखण्ड 'इ' तथा 'ई' में आग्नेय कोण पर दक्षिण दिशा में इस भूखण्ड का विस्तार लोकापवाद एवं विश्वास भंग—कारक होने के कारण अशुभ है।

(iii) भूखण्ड 'उ' तथा 'ऊ' में नैऋत्य कोण पर दक्षिण दिशा में इस भूखण्ड का विस्तार धनहानि एवं अपमान दायक होने के कारण अशुभ है।

(iv) भूखण्ड 'ए' तथा 'ऐ' में नैऋत्य कोण पर पश्चिम दिशा में इस भूखण्ड का विस्तार मुकदमेंबाजी एवं नुकसानदायक हाने के कारण अशुभ है।

(v) भूखण्ड 'ओ' तथा 'औ' में वायव्यकोण पर पश्चिम दिशा में इस भूखण्ड का विस्तार शत्रुभय एवं राजकीय कष्टदायक होने के कारण अशुभ है।

(vi) भूखण्ड 'अं' तथा 'अः' में वायव्यकोण में उत्तर दिशा में इस भूखण्ड का विस्तार विवाद एवं धनहानि दायक होने के कारण अशुभ है।

भूखण्ड का कटाव

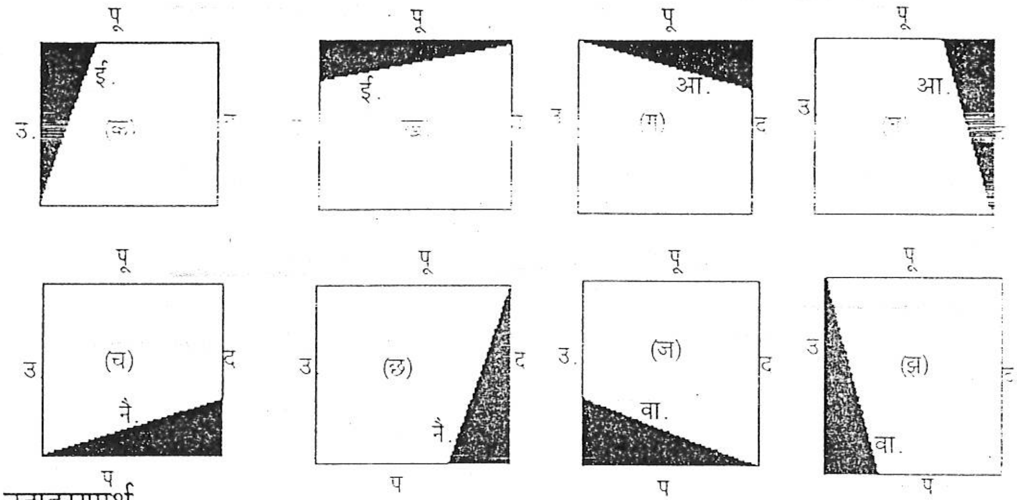
जैसे भूखण्ड का विस्तार उस पर रहने वाले लोगों को शुभ या अशुभ फल देता है; वैसे ही भूखण्ड की दिशा और कोणों का कटाव उसपर रहने वाले लोगों को प्रभावित करता है। वास्तुशास्त्र भवन निर्माण में सन्तुलन को आवश्यक धर्म मानता है। इसीलिए वर्गाकार, आयताकार एवं वृत्ताकार जैसे भूखण्डों को भवन निर्माण के लिए श्रेष्ठ माना गया है। जो भूखण्ड टेढ़ा–मेढ़ा या कटा–फटा, होगा उस पर बनने वाला भवन भी वैसा ही होगा। यदि उसमें उचित सुधार कर उसकी आकृति वर्गाकार या आयताकार बना ली जाय तो उस पर मकान बनाया जा सकता है।

वास्तुशास्त्र में ईशान दिशा का बहुत महत्त्व है। क्योंकि ईशान कोण में वास्तुपुरूष का शिर होता है। अतः किसी प्रकार का कटाव या विस्तार, जो ईशान कोण में जगह बढ़ाता हो, वह शुभ माना जाता है।

आग्नेय या वायव्य कोण के अलावा किसी भी दिशा में या कोणों में भूखण्ड में कटाव होना अशुभ माना गया है। यदि ऐसे भूखण्ड पर मकान बनाना आवश्यक

हो, तो उसको अयताकार या वर्गाकार ही भवन निर्माण करना चाहिए।

भूखण्ड पर कोणों के कटाव इस प्रकार हो सकते हैं, यथा—



उदाहरणार्थ—

(i) भूखण्ड 'क' में ईशान कोण पर उत्तर दिशा में कटान निर्धनता, शत्रुता एवं परिवार में मेलजोल की कमी के कारण अशुभ है।

(ii) भूखण्ड 'ख' में ईशान कोण पर पूर्व दिशा में कटान गरीबी, अशान्ति एवं व्यापार में हानिदायक होने के कारण अशुभ है।

(iii) भूखण्ड 'ग' में आग्नेय कोण पर पूर्व दिशा में कटान ईशान कोण में विस्तार कर रहा है। अत: शुभ है।

(iv) भूखण्ड 'घ' में आग्नेय कोण पर दक्षिण दिशा में कटान धननाश, अशान्ति एवं विश्वासघातदायक होने के कारण अशुभ है।

(v) भूखण्ड 'च' में नैऋत्य कोण पर पश्चिम में कटान पदच्युति, अर्थनाश एवं राज्यभय दायक होने के कारण अशुभ है।

(६) भूखण्ड 'छ' में नैऋत्य कोण पर दक्षिण दिशा में कटान असफलता,

विवाद एवं सन्तान को कष्ट दायक होने के कारण अशुभ है।

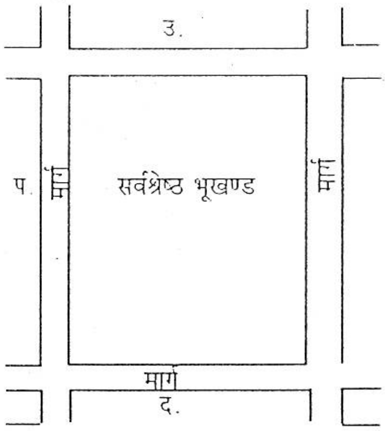
(७) भूखण्ड 'ज' में वायव्यकोण पर पश्चिम दिशा में कटान, रोग, दुर्घटना एवं राजकोप दायक होने के कारण अशुभ है।

(८) भूखण्ड 'झ' में वायव्यकोण पर उत्तर दिशा में कटान ईशान कोण में विस्तार करता है। अतः शुभ है।

भूखण्ड के समीपवर्ती मार्ग–

भूखण्ड के आकार के अनुसार उसका शुभाशुभत्व जानकर उसके समीपवर्ती मार्गों का विचार करना चाहिए। किसी भी भूखण्ड पर बनने वाले भवन का द्वार सड़क पर ही निकाला जा सकता है। अतः भूखण्ड के किस ओर सड़क या मार्ग उपलब्ध है और उस पर किस दिशा में द्वार रखना शास्त्र–सम्मत है? इन प्रश्नों पर यहाँ विचार किया जा रहा है–

चारों ओर मार्ग

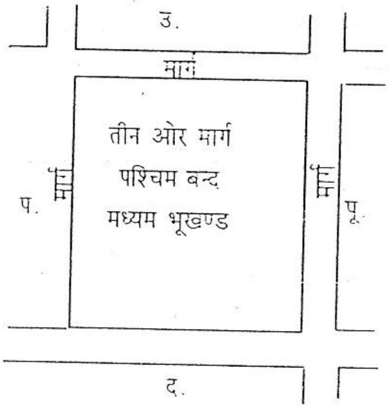


जिस भूखण्ड के चारों ओर मार्ग/सड़क हो वह सर्वश्रेष्ठ होता है। क्योंकि इस पर द्वार स्थापना में कोई कठिनाई नहीं आती। अतः आवास, व्यापार एवं उद्योग आदि के लिए भवन निर्माण हेतु ऐसा भूखण्ड श्रेष्ठ होता है।

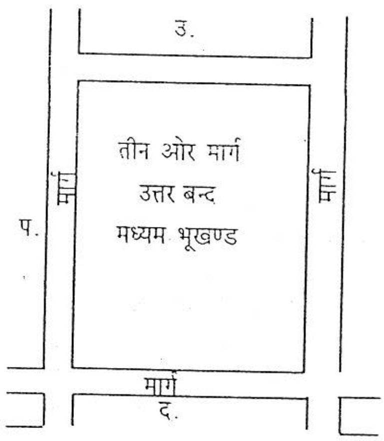
तीन ओर मार्ग



जिस भूखण्ड के तीन ओर मार्ग हो, वह मध्यम होता है। जिस भूखण्ड के उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम में सड़क हो और दक्षिण दिशा बन्द हो, वह लाभदायक नहीं होता। ऐसे भूखण्ड पर उत्तर दिशा में द्वार रखना शुभ होता है।

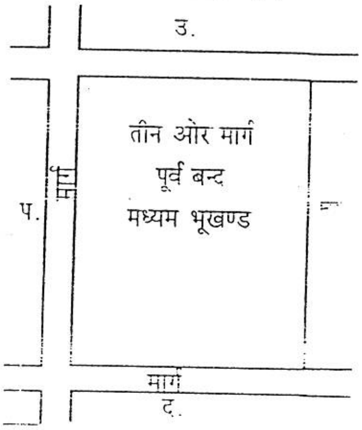


जिस भूखण्ड के तीन ओर मार्ग हो, वह मध्यम होता है। जिस भूखण्ड के उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण में मार्ग हो और पश्चिम दिशा बन्द हो, उस पर पूर्व दिशा में द्वार रखना शुभ होता है।

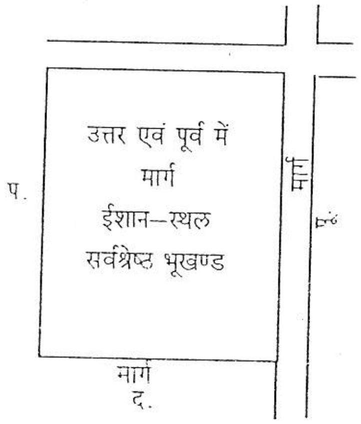


जिस भूखण्ड के तीन ओर मार्ग हो वह मध्यम होता है। जिस भूखण्ड के पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम में मार्ग हो तथा उत्तर दिशा बन्द हो, वह लाभदायक नहीं होता। ऐसे भूखण्ड पर दक्षिणदिशा में द्वार शुभ होता है।

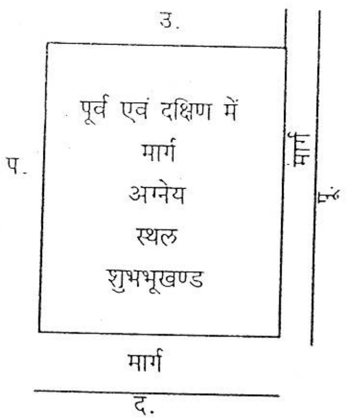
तीन ओर मार्ग



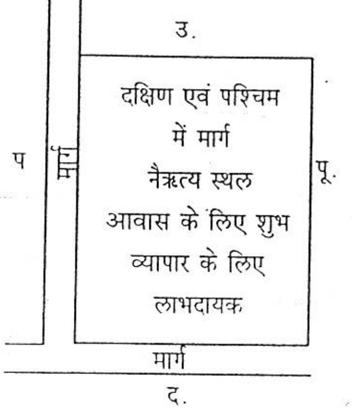
जिस भूखण्ड के तीन ओर मार्ग हो वह भूखण्ड मध्यम होता है। जिस भूखण्ड के उत्तर, पश्चिम एवं दक्षिण में सड़क हो तथा पूर्व दिशा बन्द हो वह आवास के लिए साधारण फल दायक होता है। किन्तु ऐसा भूखण्ड व्यापार के लिए अच्छा होता है। इस पर पश्चिम में द्वार शुभ होता है।



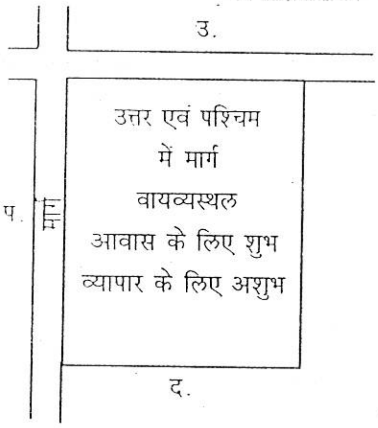
जिस भूखण्ड के उत्तर एवं पूर्व में मार्ग हो, वह ईशान स्थल कहलाता है। यह भूखण्ड आवास एवं व्यापार सभी के लिए प्रगति एवं समृद्धि दायक होता है।



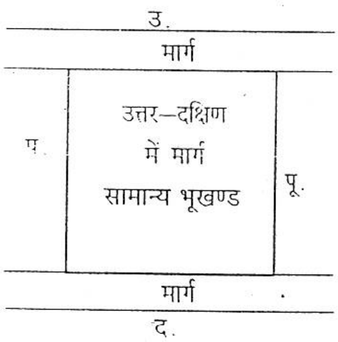
जिस भूखण्ड के पूर्व एवं दक्षिण में मार्ग हो वह आग्नेय स्थल कहलाता है। यह निवास एवं व्यापार के लिए शुभ होता है।



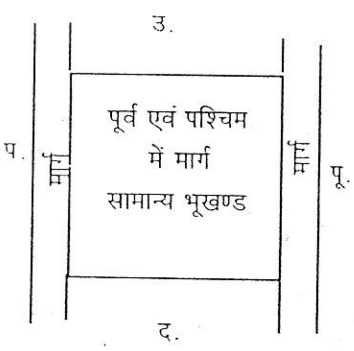
जिस भूखण्ड के दक्षिण एवं पश्चिम में सड़क हो वह नैऋत्य स्थल कहलाता है। ऐसा भूखण्ड आवास के लिए शुभ एवं व्यापार के लिए लाभ दायक होता है।



जिस भूखण्ड के उत्तर एवं पश्चिम में सड़क हो वह वायव्य स्थल कहलाता है। यह आवास के लिए शुभ किन्तु व्यापार के लिए हानिकारक होता है।



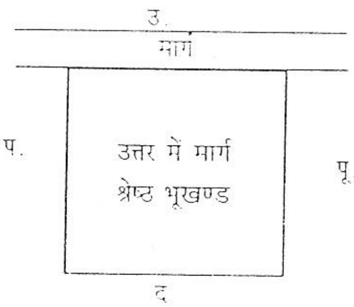
जिस भूखण्ड के आमने–सामने उत्तर एवं दक्षिण में दोनों ओर सड़क हो, वह सामान्य श्रेणी का भूखण्ड होता है। इसमें उत्तर दिशा में द्वार शुभ होता है।



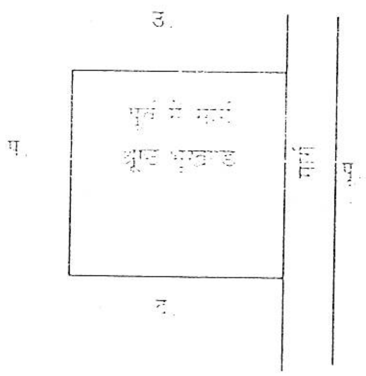
जिस भूखण्ड के दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम में सड़क हो, वह सामान्य श्रेणी का भूखण्ड होता है। इस पर पूर्व दिशा में द्वार शुभ होता है।

एक तरफ मार्ग –

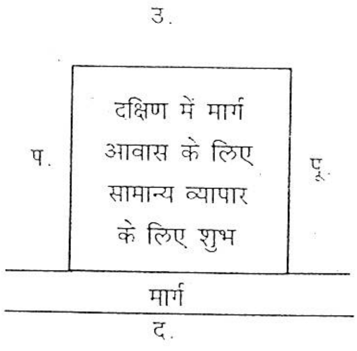
अधिकांशतया नगरों में भवन निर्माण हेतु प्लाट के एक ही तरफ सड़क होती है। जिस भूखण्ड के उत्तर या पूर्व में सड़क हो वह श्रेष्ठ माना जाता है। इस पर रहने वालों को सुख एवं समृद्धि प्राप्त होती है। और व्यापार में निरन्तर लाभ होता है।



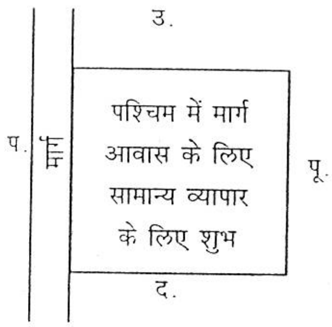
जिस भूखण्ड के उत्तर में सड़क हो वह आवास एवं व्यापार के लिए श्रेष्ठ होता है।



जिस भूखण्ड के पूर्व में सड़क हो वह आवास एवं व्यापार के लिए श्रेष्ठ होता है।



जिस भूखण्ड के दक्षिण में सड़क हो वह आवास के लिए साधारण तथा व्यापार के लिए शुभ होता है।



जिस भूखण्ड के पश्चिम में सड़क हो वह आवास के लिए सामान्य तथा व्यापार के लिए शुभ होता है।

भूखण्ड के कोनों की माप एवं गोलाई-

भूखण्ड की गुणवत्ता का निर्धारण उसके कोनों की माप तथा गोलाई के अनुसार किया जाता है। अतः भूखण्ड का चयन करते समय उसकी माप का विचार कर लेना चाहिए। जिस भूखण्ड के चारों कोने ९० अंश के अर्थात् समकोण हों, वह भूखण्ड सर्वश्रेष्ठ होता है।

भूखण्ड के अन्य कोणों की नाप का विचार इस प्रकार किया जाता है।—

(i) ईशान कोण में— कोने की माप ९० अंश से कुछ कम, शुभ है। किन्तु किसी भी हालत में ९० अंश से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ii) आग्नेय कोण में— कोने की माप ९० अंश से अधिक, अच्छी होती है। किन्तु ९० अंश से कम कदापि नहीं होनी चाहिए।

(iii) नैऋत्य कोण में— कोने की माप ९० अंश ही शुभ होती है।

(iv) वायव्य कोण में— कोने की माप ९० अंश से अधिक शुभ होती है। किन्तु ९० अंश से कम नहीं होनी चाहिए।

कोनों की गोलाई–

भूखण्ड के ईशान कोण पर गोलाई होना वहाँ निवास करने वालों के लिए किसी हालात में शुभ नहीं होता। भूखण्ड के अन्य कोनों पर गोलाई हो, तो उसमें सुधार कर मकान बनाया जा सकता है।

वेध (शूल) दोष–

भूखण्ड एवं मकान के द्वार के सामने मन्दिर, धर्मस्थान, स्तम्भ, कुँआ, जलाशय एवं सड़क होने से वेध दोष होता है। यदि ये मकान की ऊँचाई से दो गुना दूरी पर हो, तो द्वार के लिए वेध दोष नहीं होता [४८]

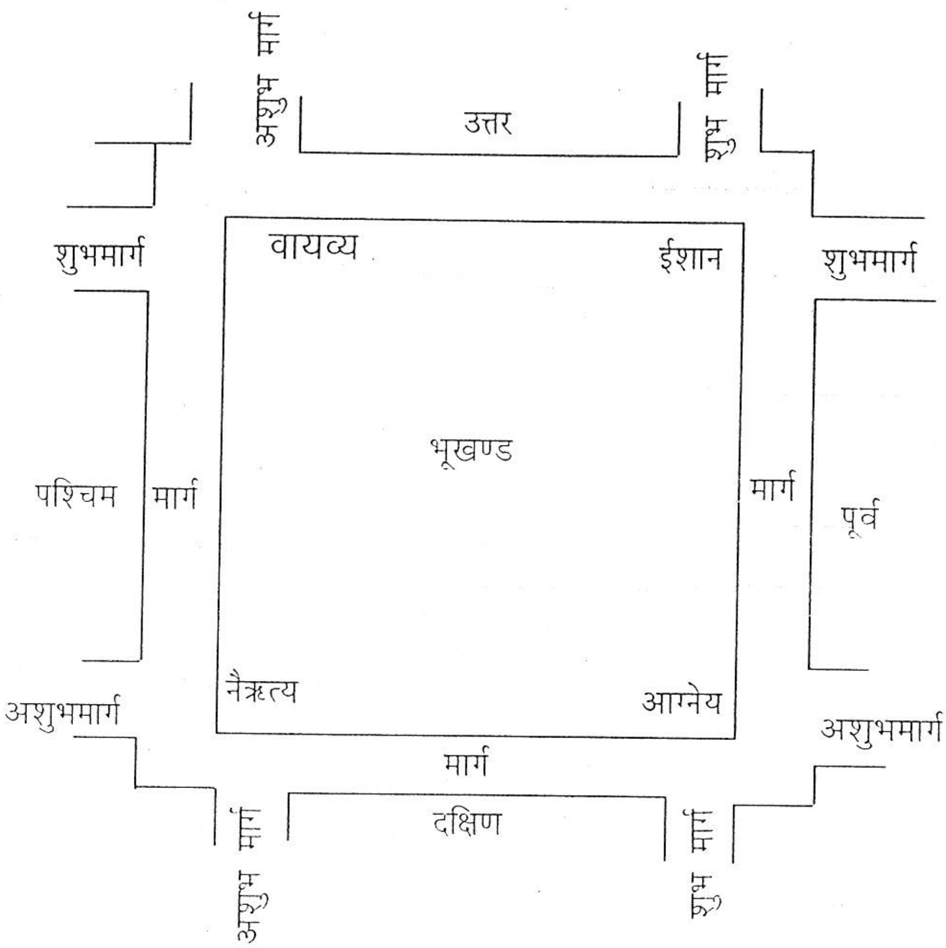
किन्तु भूखण्ड के वेध का विचार मुख्यरूप से मार्ग के आधार पर किया जाता है। यदि कोई सड़क इस प्रकार हो कि वह सीधा आकर भूखण्ड को छूती हो, तो वह भूखण्ड के लिए वेध/शूल होता है। यह मार्ग एक तीर की तरह आकर भूखण्ड को वेधता है।

भूखण्ड से पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण दिशा में किसी भी ओर से कोई सड़क भूखण्ड के बीच के भाग को छूती हो, तो यह वेध दोष होता है। यदि यह वेध उत्तर और पूर्व दोनों दिशा में हो तो दोष नहीं होता। तथा किसी गोल चक्कर के पास के भूखण्ड पर एक, दो या तीन ओर सड़क हो तो भी वेध–दोष नहीं हो, अन्यथा दोष होता है।

यदि भूखण्ड की सीमा से लगी सड़क पर अन्य सड़क समकोण की सीध में आकर मिलती है, और वह सड़क जरासी भी आगे बढ़ने पर भूखण्ड को छूती हो, तो वेध शूल होता है। यह वेध शूल दिशाओं में अशुभ तथा कोणों में विभिन्न स्थितियों में कभी शुभ एवं कभी अशुभ होता है, यथा–

---

४८. देखिए–बृहद्वास्तुमाला श्लो. १५३– पृ.९३



शुभ वेध–

वास्तुशास्त्र के अनुसार निम्न स्थितियों में वेध शुभ माना जाता है–

(i) जिस भूखण्ड के ईशान कोण पर वेध हो और पूर्व या उत्तर या दोनों ओर से आने वाली सड़कें ईशान को छूती हों।

(ii) जिस भूखण्ड के वायव्य कोने पर वेध हो और सड़क पश्चिम से आकर भूखण्ड को छूती हो।

(iii) जिस भूखण्ड पर आग्नेय कोण पर वेध हो और सड़क दक्षिण से आकर भूखण्ड को छूती हो

अशुभ वेध-

(i) यदि भुखण्ड के नैऋत्य कोण पर वेध हो और सड़क दक्षिण या पश्चिम अथवा दोनों ओर से आती हो।

(ii) यदि भूखण्ड के वायव्य कोण पर वेध हो और सड़क उत्तर से आती हो।

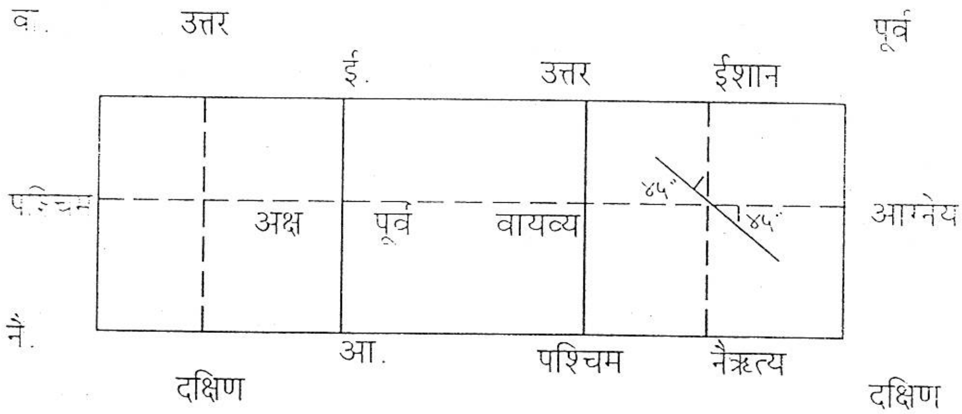
(iii) यदि भूखण्ड के आग्नेय पर वेध हो और सड़क पूर्व से आती हो।

कोणों स्थित भूखण्ड-

भवन निर्माण के लिए उपलब्ध भूखण्ड ठीक–ठीक दिशाओं में कम ही मिल पाते है। सामान्यतया उपलब्ध भूखण्ड दिशाओं से हटकर कुछ आगे–पीछे होते हैं।

जिस भूखण्ड में चुम्बकीय किरण उसके बीचों बीच से होकर निकले वह भूखण्ड दिशा में होता है और भवन निर्माण के लिए श्रेष्ठ होता है। किन्तु जिस भूखण्ड में चुम्बकीय किरण भूखण्ड के अक्ष पर ४५ अंश का कोण बनाती हुई गुजरे, तब वह भूखण्ड कोण में स्थित भूखण्ड कहलाता है, यथा–

दिशा में स्थित भूखण्ड — कोण में स्थित भूखण्ड



कोणों में स्थित भूखण्ड परिस्थिति के अनुसार शुभ या अशुभ होते हैं। इस प्रकार के भूखण्डों में चारों कोणों पर मार्ग या सड़क हो सकती है। किन्तु इनमें से केवल ईशान में मार्गवाले भूखण्ड श्रेष्ठ होते हैं। बाकी भूखण्डों में से वायव्य एवं आग्नेय कोण में सड़क वाले भूखण्ड आवास के लिए शुभ नहीं होते। इनमें केवल कुछ खास प्रकार का व्यापार/व्यवसाय किया जा सकता है।

किस कोण पर सड़क या मार्ग होने पर उस भूखण्ड का किस–किस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है? इसका निर्णय इस प्रकार किया जा सकता है–

१. जिस भूखण्ड के ईशानकोण में सड़क हो उस पर आवास, फैक्ट्री, होटल, रैस्ट्रां, हलवाई की दूकान, कचहरी, वकील का ऑफिस, सौन्दर्य प्रसाधन कार्य, ब्यूटीपार्लर, बिजली, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं कम्प्यूटर का कार्य किया जा सकता है।

२. जिस भूखण्ड पर आग्नेयकोण में सड़क हो उस पर बेकरी, हलवाई, खान–पान की चीजें, ऑटोमोबाइल, इंजन, बिल्डिंग मेटेरियल, पत्थर, टाइल्स, मन्दिर एवं यज्ञशाला बनाई जा सकती है।

३. जिस भूखण्ड के वायव्यकोण में सड़क हो उस पर आवास, दूकान, शोरूम, प्रोफेशनल के ऑफिस, फैक्ट्री, गैराज, पेट्रोल पम्प, सिनेमा, एयरकण्डीशनिंग का कार्य एवं खाद्यान्न का कार्य किया जा सकता है।

४. जिस भूखण्ड के नैऋत्य कोण में सड़क हो, उस पर आवास नहीं बनाना चाहिए। उस पर अस्पताल, नर्सिंगहोम, डॉक्टर का क्लीनिक, बार, परमिटरूम, जुआघर, टायर, रबड़, हार्डवेयर, साइन्टीफिक इन्स्टूमेन्ट एवं दवाई की दूकान का कार्य किया जा सकता है।

कोणों में स्थित भूखण्ड पर भवन निर्माण के समय कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए—

१. इन भूखण्डों में ईशान कोण में ज्यादा खुली जगह छोड़े।

२. इन भूखण्डों पर निर्माण भूखण्ड की भुजाओं के समानान्तर करें।

३. इन भूखण्डों के कोणों में किसी प्रकार का विस्तार या कटाव हो, तो उसको सुधार लें।

४. बेसमेन्ट किसी हालात में ५० प्रतिशत से अधिक न बनावें।

५. नैऋत्य के समीपवर्ती पश्चिमी एवं दक्षिणी दिशा के कोण ९० अंश के ही हों।

६. ईशान के अलावा वेध (शूल) शुभ नहीं होता। अतः वेध को ध्यान में रखकर द्वार की स्थापना करें।

६. वेध होने पर आगे बरामदा बनाकर निर्माण कार्य करें।

गुणवत्ता के आधार पर भूखण्ड की श्रेणियाँ

किसी भी भूखण्ड का आकार, विस्तार, कटान, आस—पास का वातावरण, समीपवर्ती सड़क, भूमिढ़लान, वेध एवं कोनों की माप के आधार पर उसकी गुणवत्ता का निर्धारण होता है। भूखण्ड की गुणवत्ता के घटकों का वर्णन पहिले किया जा चुका है। अतः गुणवत्ता की कसौटी पर कस कर भूखण्डों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

१. उच्च श्रेणी

२. मध्यम श्रेणी

३. साधारण श्रेणी और

४. निम्न श्रेणी

उच्च श्रेणी के भूखण्ड

१. जिस भूखण्ड का आकार आयातकार या वर्गाकार हो, चारों ओर मार्ग हो, प्रत्येक कोना समकोण हो, भूमि का ढ़लान पूर्व या उत्तर में हो, वेध न हो और पश्चिम एवं दक्षिण दिशा में पहाड़, चट्टान टीले, ऊँचे भवन या ऊँचे वृक्ष हों।

२. जिस भूखण्ड आकार वर्गाकार, वृत्ताकार या आयातकार हो, उसके पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम में सड़क हो, पश्चिम की सड़क कुछ ऊँची हो, ईशानकोण में विस्तार या वेध हो और आस–पास का वातावरण मनोहर हो।

३. जिस भूखण्ड का आकार शुभ हो, उसके पूर्व एवं उत्तर में सड़क हो, पूर्व या उत्तर में वेध, दक्षिण व पश्चिम भाग ऊँचा हो, पूर्व या उत्तर में नदी, तालाब, बावड़ी या जलाशय हो और पूर्व में ढ़लान हो।

४. जिस भूखण्ड का आकार शुभ हो, उत्तर व पश्चिम में सड़क हो, उत्तर में ढ़लान हो, पश्चिम की भूमि उन्नत हो, उत्तर–पश्चिम कोने पर वेध हो, पश्चिम में ऊँचे भवन या पेड़ हों।

मध्यम श्रेणी के भूखण्ड

१. जिस भूखण्ड का आकार भद्रासन, चतुष्कोण या षड्कोण हो, जिसके पूर्व व पश्चिम में सड़क हो, पश्चिम सड़क थोड़ी ऊँची हो, भूमि का ढ़लान पूर्व की ओर हो और पूर्व की ओर समुद्र, नदी या जलाशय हो।

२. जो आवासीय भूखण्ड गोमुखी या व्यापारिक भूखण्ड सिंहमुखी हो, उसके उत्तर व दक्षिण में सड़क हो, दक्षिणी सड़क कुछ ऊँची हो, भूमि का ढ़लान उत्तर की ओर हो, उत्तर में खुला और दक्षिण में ऊँचे भवन या वृक्ष हो।

३. जो भूखण्ड अष्टभुजाकार हो, उसके उत्तर या पूर्व में सड़क हो, भूमि का ढ़लान ईशान में हो, ईशान कोण पर वेध हो और पश्चिम में ऊँचे भवन या वृक्ष हों।

४. जिस भूखण्ड का आकार शुभ, ईशान में विस्तार एवं खुलापन पूर्व, पश्चिम या उत्तर में सड़क हो, वायव्य कोण पर पश्चिम की ओर से या आग्नेय कोण पर दक्षिण की ओर से वेध हो और सामने खुला मैदान हो।

साधारण श्रेणी के भूखण्ड

१. जिस भूखण्ड का आकार शुभ हो, जिसके पश्चिम में मार्ग, पूर्व में ढ़लान और उत्तर में ऊँचे भवन या वृक्ष हों।

२. जिस भूखण्ड का आग्नेय कोण पर पूर्व की ओर या वायव्य कोण पर उत्तर की ओर कटान हो, जिसके उत्तर, दक्षिण या पूर्व में मार्ग हो।

३. जिस भूखण्ड के पूर्व में मार्ग तथा दक्षिण, पश्चिम में ऊँचे भवन, पहाड़ या वृक्ष हों।

४. जिस भूखण्ड के उत्तर में मार्ग, ईशान में विस्तार, शुभ आकार एवं समीप में देवालय, गिरजाघर, मस्जिद या गुरुद्वारा हो।

निम्न श्रेणी के भूखण्ड

१. जिस भूखण्ड के दक्षिण एवं पूर्व में सड़क हो और ढ़लान दक्षिण में हो।

२. जिस भूखण्ड के दक्षिण में मार्ग हो और भूखण्ड का ढ़लान दक्षिण या पश्चिम में हो।

३. जिस भूखण्ड का आकार विजनाकार हो, पूर्व में सड़क, उत्तर में ढ़लान और वातावरण रम्य हो।

४. जिस भूखण्ड के उत्तर, दक्षिण या पूर्व में सड़क और कोई कोना कटा हो।

शल्योद्धार

भूखण्ड की आकृति, आसपास का वातावरण, समीपवर्ती मार्ग, विस्तार या कटान एवं वेध आदि से जैसे भूखण्ड की गुणवक्ता का निर्धारण होता है। उसी प्रकार भूमि की गुणवत्ता उसके दोष रहित होने से की जाती है। भूमि के घनत्व के परीक्षण के प्रसंग में पहिले कहा जा चुका है कि जमीन में दीमक, बिल, भूषा, कपड़ा, राख, कौड़ी, जली लकड़ी, खोपड़ी, खप्पर एवं हड्डी हो, तो मकान नहीं बनाना चाहिए।

इन चीजों में से दीमक, बिल, भूसा,राख, कपड़ा, रुई, लकड़ी, कोयला एवं कौड़ी आदि जमीन को पोला करते हैं। अतः इनसे जमीन का घनत्व प्रभावित होता है। जबकि जमीन में हड्डी, खोपड़ी या खप्पर होने से उस पर रहने वालों पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ता है। बृहद् वास्तुमालाकार का मत है कि जमीन में गाय की हड्डियाँ हो तो राजभय, घोड़े की हड्डियाँ हों तो रोग, कुत्ते की हड्डियाँ हो तो कलह, गधे और ऊँट की हड्डियाँ हो तो धन हानि, मनुष्य की हड्डियाँ हो तो सन्तान हानि तथा बकरे की हड्डियाँ हो, तो अग्निभय होता है।[४९]

---

४९. शल्ये गवां भूपभयं हयानां रुजः शुनां वै कलहप्रणाशौ।
खरोष्ट्रयोर्हानिरपत्यनाशं नृणामजस्याग्निभयं तनोति।

शल्य शब्द का अर्थ है हड्डी। जिस भूमि में शल्य हो– उस पर बना हुआ भवन कितना ही भव्य, विस्तृत एवं आलीशान क्यों न हो, उसमें रहने वाले लोगों को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कष्टों को झेलना पड़ता है। इसलिए जमीन में दबे हुए शल्य को निकालकर ही मकान बनाना चाहिए।

जमीन के भीतर गढ़े हुए शल्य कें निकालने की विधि को शल्योद्धार कहते हैं। शल्योद्धार का सर्वोत्तम उपाय यह है, कि भूखण्ड की मिट्टी को ३½ हाथ की गहराई तक खोदकर निकलवा देना चाहिए और उसमें अच्छी मिट्टी भरवा कर मकान बनाना चाहिए। इससे शल्य दोष दूर हो जाता है। क्योंकि एक पुरूष अर्थात् ३½ हाथ से नीचे शल्य रहने पर वह दोष दायक नहीं होता।[50]

यदि जमीन में दीमक, बिल, रुई, कपड़ा, राख, भूसा एवं लकड़ी जैसी जमीन को पोली करने वाली चीजें हों और उस जमीन पर मकान बनाना अत्यावश्यक हो तो उस जमीन की ३½ हाथ गहरा खुदवाकर उसकी मिट्टी निकलवाकर उस गड्ढे में आग लगा देनी चाहिए। फिर उस गड्ढे को पत्थर के मोटे टुकड़ों से भरवाकर मिट्टी डलवाकर ऊपर से पानी डलवा देना चाहिए। ऐसा करने से मिट्टी पत्थरों के बीच जाकर जम जाती है और भूखण्ड का घनत्व बढ़ जाता है।

शल्योद्धार के लिए वास्तुशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों– विश्वकर्माप्रकाश, वास्तुराजवल्लभ, वास्तुरत्नावली, बृहद्वास्तुमाला, मुहूर्तमार्तण्ड, महाज्योतिर्निबन्ध एवं वास्तु रत्नाकर आदि ग्रन्थों में शल्य ज्ञान के लिए अनेक विधियों का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण विधियाँ इस प्रकार है–

---

५०. पुरुषाधः स्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत्।

१. महाज्योति निबन्ध के अनुसार गृह निर्माण से पहिले भूखण्ड को ९ भागों में विभक्त कर उसमें पूर्व आदि क्रम से व, क, च, त, ए, ह, स, य तथा मध्य में प इन नौ अक्षरों को लिखना चाहिए। फिर स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन, इष्टदेव, कुलदेव एवं भूमि का पूजन कर तीन ब्राह्मणों द्वारा ''ऊँ धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा''– इस मन्त्र का तीन–तीन हजार बार अर्थात् कुल ९,००० जप करना चाहिए।

इसके बाद ब्राह्मण पुष्प का, क्षत्रिय नदी का, वैश्य देवता का और अन्य लोग फल का नाम उच्चारित करें। भूस्वामी द्वारा उच्चारित नाम के प्रथम अक्षर से शल्य का ज्ञान होता है–

शल्योद्धार चक्र

ईशान		पूर्व		अग्नेय
	य	व	क	
उत्तर	स	प	च	दक्षिण
	ह	ए	त	
वायव्य		पश्चिम		नैऋत्य

नाम का प्रथम अक्षर	दिशा	शल्य की स्थिति	फल
व	पूर्व	मनुष्य की हड्डी 1½ हाथ नीचे	मृत्यु
क	आग्नेय	गधे की हड्डी कमर पर्यन्त नीचे	राजभय
च	दक्षिण	बन्दर की हड्डी कमर पर्यन्त नीचे	मृत्यु
त	नैऋत्य	घोड़े की हड्डी १½ हाथ नीचे	धननाश
ए	पश्चिम	बच्चे की हड्डी १½ हाथ नीचे	चोरी
ह	वायव्य	पुरुष की हड्डी १½ हाथ नीचे	मृत्यु
स	उत्तर	ब्राह्मणशल्य कमरतक नीचे	दरिद्रता
य	ईशान	भालू की हड्डी १½ हाथ नीचे	पशुनाश
प	मध्य में	नरकपाल छाती तक नीचे	कुलनाश

२. वास्तुराज वल्लभ में एक अन्य रीति बतलाई गयी है-- भूखण्ड पर शुभ मुहूर्त में पूर्ववत् पूजन कर १ ॐ धारिणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा रक्षामि या २. ॐ बह्नि प्रियायै स्वाहा. मन्त्र का विधिवत् अनुष्ठान कराने के बाद भूखण्ड के स्वामी से किसी देवता, वृक्ष या फल का नाम बुलवायें। उसके द्वारा उच्चारित नाम के प्रथमाक्षर के अनुसार निम्न चक्र के आधार पर भूखण्ड की दिशा में शल्य होता है।[51]

---

५१. आकाचाराएतशापायवर्गा: प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्यमुक्तम्।

शल्योद्धार चक्र

ईशान प फ ब भ म	पूर्व अ आ इ ई ऋ ॠ ऌ ॡ उ ऊ	आग्नेय क ख ग घ ङ
उत्तर श ष स ह	मध्य य र ल व	च छ ज झ ञ दक्षिण
त थ द ध न वायव्य	ए ऐ ओ औ अं अः पश्चिम	ट ठ ड ढ़ ण नैऋत्य

नाम प्रथम अक्षर	शल्य की दिशा
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ	पूर्व
क ख ग घ ङ	आग्नेय
च छ ज झ ञ	दक्षिण
ट ठ ड ढ़ ण	नैऋत्य
ए ऐ ओ औ अं अः	पश्चिम
त थ द ध न	वायव्य
श ष स ह	उत्तर
प फ ब भ म	ईशान
य र ल व	मध्य

शल्योद्धार करने से भूमि–दोष दूर हो जाते हैं। भूमि भवन निर्माण के बाद शल्योद्धार करना बहुत कठिन और कभी–कभी असम्भव होता है। यदि शल्योद्धार न किया जाय तो, वहाँ रहने वाले लोगों को सुख और शान्ति नहीं मिल पाती। अतः प्राचीन ग्रन्थों में प्रतिपादित विधियों से शल्योद्धार कराने के बाद भवन का निर्माण करना चाहिए।

अध्याय तृतीय

87 - 141

- गृहारम्भ का मुहूर्त
- विशेष शुभ योग
- गृहारम्भ में निषिद्ध
- वृष वास्तु चक्र
- शिलान्यास के लिए खात और उसकी दिशा
- तलघर (बेसमेन्ट)
- कुंआ, बोरिंग एवं भूमिगत टंकी
- सैप्टिक टैंक
- भवन की उंचाई
- भवन निर्माण
- शुभ एवं अशुभ द्विशाल
- शुभ एवं अशुभ त्रिशाल
- भवन का द्वार
- द्वार स्थापना के अन्य नियम
- शुभ एवं अशुभ ऊर्जा स्थान
- एकाशीतिपद वास्तु
- खिड़की, झरोखा, बरामदा
- ब्रह्म स्थान एवं मर्म स्थान
- आंगन
- आवासीय भवन में कक्षों का निर्माण
- पूजा घर

- स्नान घर
- रसोई घर
- शयन कक्ष
- भोजन कक्ष
- अध्ययन कक्ष
- शौचालय
- अन्नभण्डार एवं पशुशाला
- कोषागार
- भारी सामान का भण्डार.
- रोदन/दण्ड गृह
- औषधि कक्ष
- सूतिका गृह
- दधिमन्थन गृह
- घी तेल का भण्डार
- रति गृह
- आज के सन्दर्भ में भवन निर्माण की समीक्षा
- भवन निर्माण
- कपाट (किवाड़)
- द्वार स्थापना का मुहूर्त
- घर के समीप वृक्ष एवं वाटिका

अध्याय तृतीय

गृहारम्भ का मुहूर्त

भूखण्ड पर भवन निर्माण के लिए उसकी नींव रखना या भवन निर्माण का प्रारम्भ करना गृहारम्भ कहलाता है। यह कार्य जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य है और इसका सम्बन्ध कई पीढ़ियों से रहता है। अत: इसको शुभ मुहूर्त में करना चाहिए।

१. मास विचार

गृहारम्भ के लिए वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन मास उत्तम है। मतान्तर से कार्तिक एवं माघ मास भी ग्राह्य हैं।[५२]

२. पक्ष विचार

गृह निर्माण शुक्ल पक्ष में करना चाहिए। मतान्तर से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक किया जा सकता है।

३. तिथि विचार

गेहारम्भ में २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३, एवं १५ तिथियाँ शुभ होती हैं।[५३]

५. नक्षत्र विचार

गृहारम्भ में रोहिणी, मृगशीर्ष, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढ़ उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती नक्षत्र शुभ होते हैं।[५४] मन्तान्तर से पुष्य एवं पुनर्वसु भी ग्राह्य हैं।

---

५२. सौम्यफाल्गुवैशाखमाघश्रावणकार्तिका:।
मासा: स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदा:।। – नारद

५३. द्वारिद्रयं प्रतियत् कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी।
अष्टम्युच्चाटनी ज्ञेया नवमी शस्त्रधातिनी।।
अमायां राजभीति: स्याच्चतुर्दश्यां स्त्रिय: क्षय:।
एवं निषिद्धतिथियो गृहारम्भे प्रकीर्तिता:।। –बृहद्वास्तुमाला श्लो.–६७–६८

५४. त्र्युत्तरेऽपि रोहिण्यां चित्रे मैत्रे करद्वये।
घनिष्ठाद्वितयेपौष्णे गृहारम्भ: प्रशस्यते।। – गर्ग

६. वार विचार

गेहारम्भ के लिए सोमवार, बुधवार गुरुवार, शुक्रवार एवं शनिवार ग्राह्य हैं।[५५]

७. लग्न विचार

वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न उत्तम होती है। मतान्तर से मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन लग्न में गेहारम्भ शुभ है। चर लग्न त्याज्य हैं।[५६] लग्न से छठे एवं ८ वें भाव को छोड़ कर शेष भावों में शुभ ग्रह और ३ सरे, ६ ठे एवं ११ वें भाव में पापग्रह शुभ फल दायक होते हैं।[५७]

८. विशेष शुभ योग

१. श्रावण मास, शुक्लपक्ष, सप्तमीतिथि, शनिवार, शुभ योग, स्वाति नक्षत्र एवं सिंह लग्न इस सात सकारों का योग गृहारम्भ में प्रशस्त माना जाता है। इस योग गृह निर्माण करने से पुत्र सुख, धनलाभ एवं वैभव बढ़ता है।[५८]

२. पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा एवं पूर्वाषाढ़ ये नक्षत्र गुरु से युत्त, एवं गुरुवार हो, तो इस योग में

---

५५. न्यकत्वा भौमाकर्यो वारं शेषवाराः शुभावहाः।।

५६. द्वयङ्के वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्ने शुभैर्वीक्षिते।।

—विश्वकर्माप्रकाश

५७. व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगै खलैः।

—मुहूर्तचिन्तामणि

५८. शनौ स्वातौ सिंहलग्नं शुक्लपक्षश्च सप्तमी।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्तकीर्तिताः।।
सप्तानां योगतो वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा।
गजश्च धनधान्यादिनित्यं तिष्ठन्ति सर्वतः।।

—वास्तु प्रदीप

बनाया हुआ घर पुत्र एवं राज्यदायक होता है।[59]

३. विशाखा, अश्विनी, चित्रा, घनिष्ठा, शतभिषा एवं आर्द्रा ये नक्षत्र शुक्र से युत हो और शुक्रवार हो, तो योग में बनाया घर धन एवं धान्य दायक होता है।[60]

४. रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त– ये नक्षत्र बुध से युक्त हो और बुधवार हो, तो इस योग में बनाया घर सुख एवं पुत्रदायक होता है।

गृहारम्भ में निषिद्ध

(१) मंगल एवं रविवार

(२) ४, ९, १४, ७ एवं अमावस्या तिथि

(३) मेष, कर्क, तुला एवं मकर लग्न

(४) वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ गण्ड एवं परिध योग

(५) चन्द्रमा, गुरू एवं शुक्र यदि निर्बल, नीचराशि गत या अस्तगत हों।

(६) भूमि शयन का दिन

१. सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे ५, ७, ९, १२, १९ एवं २६वें नक्षत्र में भूमि शयन होता है।

२. मतान्तर – सूर्य संक्रान्ति से ५, ७, ९, ११, १५, २०, २२, २३ एवं २८वें दिन भूमि शयन होता है।

५९–६० पुष्य ध्रुवेन्दु हरिसर्पजलैस्सजीवै–
स्तद्वासरे च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।
द्वीशाश्वितक्षवसु पाशिशिवैः स शुक्रे–
वारे सितस्य च गृहं धन धान्यदं स्यात्।।

वृष वास्तु चक्र

गेहारम्भ में नक्षत्र शुद्धि का विचार वृष वास्तु चक्र से किया जाता है यथा-- सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करने पर ७ नक्षत्र अशुभ, उससे आगे ११ नक्षत्र शुभ और उससे आगे १० नक्षत्र अशुभ माने जाते हैं। यहाँ अभिजित सहित २८ नक्षत्रों की गणना होती है।[61]

शिलान्यास

भवन निर्माण की नींव रखना शिलान्यास कहलाता है। भवन निर्माण का कार्य शिलान्यास से प्रारम्भ होता है। यह कार्य पूर्वोक्त मुहूर्त में विधिवत करना चाहिए। इसके उपयुक्त स्थान पर नींव के लिए खोदी गई खात (गड्ढे) में पूजन एवं अनुष्ठान पूर्वक पाँच शिलाओं को स्थापित किया जाता है।

खात की दिशा

शिलान्यास के लिए खात (गड्ढा) सामान्यतया नैऋत्य कोण में किया जाता है। तथापि यह सूर्य की राशि को ध्यान में रखकर किया जाता है, यथा[62]

(१) मकान बनाने के लिए

सूर्य की राशियाँ	खात की दिशा
वृष, मिथुन एवं कर्क	नैऋत्य कोण
सिंह, कन्या एवं तुला	आग्नेय कोण
वृश्चिक, धनु एवं मकर	ईशान कोण
कुम्भ, मीन एवं मेष	वायव्य कोण

---

६१. सूर्यभाद् गणयेद् वास्तुचक्रं दिनभावधि।
अश्व–रुद्र–दशक्ष्चि ह्यशुभं शुभदं क्रमात्।।

६२. देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशोविलोमतः।
मीनार्क–सिंहार्क–मृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्।
—मुहूर्तचिन्तामणि

(२) मन्दिर के लिए

सूर्य की राशियाँ	खात की दिशा
मीन, मेष एवं वृष	आग्नेय कोण
मिथुन, कर्क एवं सिंह	ईशान कोण
कन्या, तुला एवं वृश्चिक	वायव्य कोण
धनु, मकर एवं कुम्भ	नैऋत्य कोण

(३) जलाशय के लिए

सूर्य की राशियाँ	खात की दिशा
मेष, वृष एवं मिथुन	ईशान कोण
कर्क, सिंह एवं कन्या	वायव्य कोण
तुला, वृश्चिक एवं धनु	नैऋत्य कोण
मकर, कुम्भ एवं मीन	आग्नेय कोण

तलघर (बेसमेन्ट)

आज महानगरों में जनसंख्या की वृद्धि और उपलब्ध भूमि की कमी दो ऐसे कारण है, कि व्यक्ति भूखण्ड की एक–एक इंच जगह का उपयोग करना चाहता है। इसलिए आजकल भूखण्ड पर बेसमेन्ट बनाने का रिवाज चल पड़ा है।

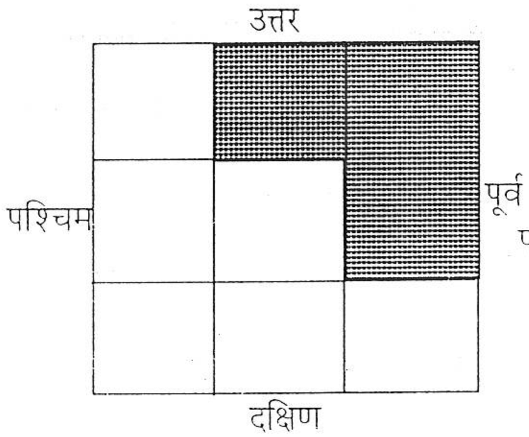
किन्तु तहखाना या बेसमेन्ट बनाना वास्तु शास्त्र के अनुसार एक कठिन कार्य है। बृहत्संहिता के अनुसार भूखण्ड पर ब्रह्मस्थान एवं मर्म स्थानों की रक्षा करनी चाहिए। मर्म स्थानों को बचाने से एक छोटा सा तहखाना बन सकता है – लम्बा चौड़ा बेसमेन्ट नहीं।

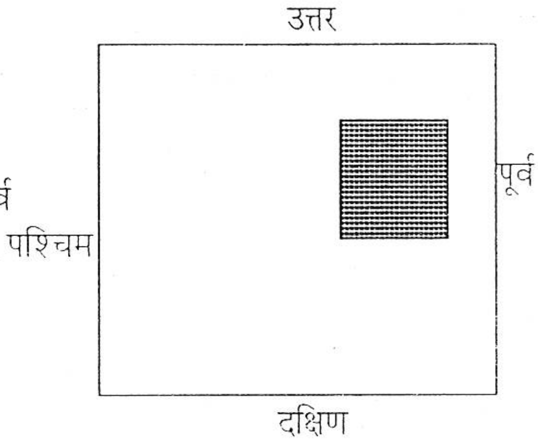
बेसमेन्ट को बनाते समय वास्तु पुरूष के मुख, हृदय, नाभि, शिर एवं दोनों स्तन – इन छः भागों पर वेध नहीं होना चाहिए। किन्तु यदि बड़ा तलघर बनाया जाय, तो किसी न किसी अंग पर वेध निश्चित रूप से हो जाता है। इसलिए यह दुष्परिणाम दायक है।

आवासीय भवन में पूरे, आधे या एक चौथाई भाग में कहीं भी एक तरफ बेसमेन्ट नहीं बनाना चाहिए। व्यावसायिक भवनों में ऐसी कठिनाई नहीं आती। अत: व्यावसायिक भूखण्ड पर एक या दो मंजिल गहरा बेसमेन्ट बनाया जा सकता है।

यदि आवासीय भूखण्ड पर बेसमेन्ट बनाना आवश्यक हो, तो पश्चिम एवं दक्षिण दिशा को बचाकर उत्तर और पूर्व दिशा में ही बनाना चाहिए। किन्तु किसी हालात में आवासीय भूखण्ड पर पूरा तलघर नहीं बनाना चाहिए।

उपयुक्त स्थान –



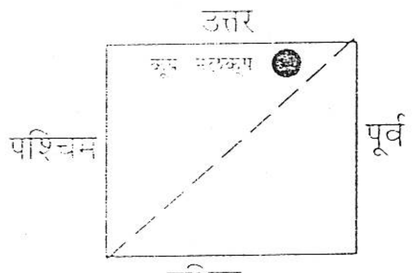


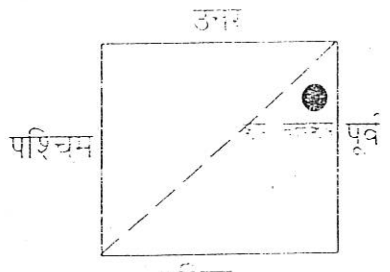
भूमिगत तलघर में सूर्य का प्रकाश एवं हवा पहुँचती रहे यह ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए उत्तर एवं पूर्व में खुला स्थान रखना चाहिए। इसकी ऊंचाई कम से कम ६ हाथ अर्थात ९ फीट होनी चाहिए, जिसमें से ९/३ भाग भूखण्ड के तल से ऊपर रखना चाहिए। तात्पर्य यह है कि तलघर भूखण्ड तल से कम से कम ६ फुट गहरा और ३ फुट ऊंचा होना चाहिए, जिससे उसमें प्रकाश एवं हवा आ–जा सके। तलघर में स्नानघर व टॉयलेट आदि नहीं बनानी चाहिए। इससे गन्दगी फैलती है और वातावरण अपवित्र या दूषित हो जाता है।

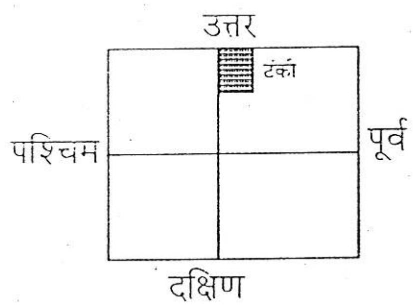
कुँआ, बोरिंग एवं भूमिगत टंकी

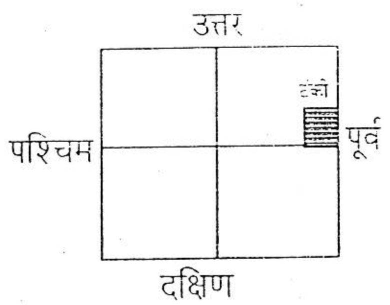
प्रत्येक भवन में जलस्रोत एवं जल का भण्डारण आवश्यक होता है। जीवन यापन के लिए ही नहीं अपितु भवन निर्माण एवं भवन की सफाई के लिए पर्याप्त मात्रा में जल आवश्यक होता है। अतः भवन बनाने से पहले पानी का साधन और उसके भण्डारण की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। इसके लिए कुँआ, बोरिंग (नलकूप) या सार्वजनिक जल वितरण प्रणाली होने पर भूमिगत टंकी का निर्माण किया जा सकता है।

कुँआ, बोरिंग या भूमिगत टंकी कहां बनानी चाहिए? इस विषय में मुहूर्त चिन्तामणि एवं बृहद् वास्तुमाला में बतलाया गया है, कि भूखण्ड के मध्य में धननाश, ईशान में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य, आग्नेय में सन्तान नाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति लाभ, वायव्य में शत्रुपीड़ा एवं उत्तर में कुँआ, नलकूप या भूमिगत टंकी बनाने से सुख मिलता है।[६३]









---

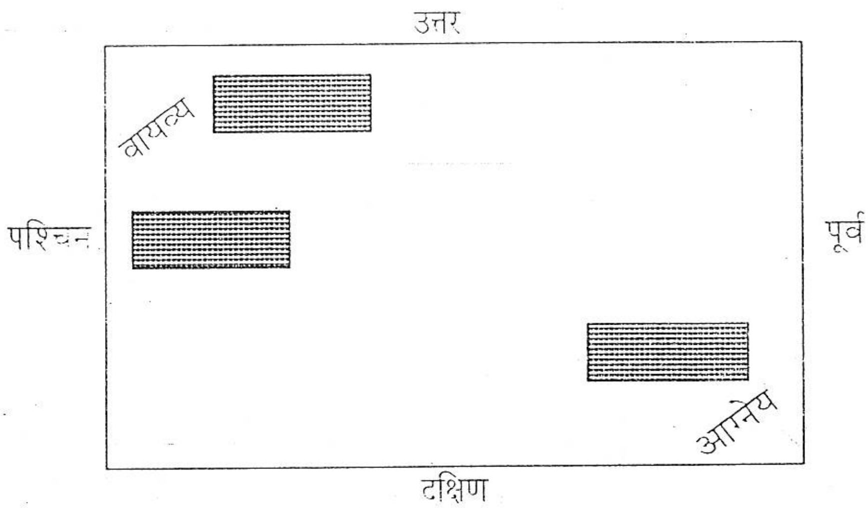
६३. कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिश्वर्यवृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशोमृतिश्चं सम्पत्पीड़ा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।
—मुहूर्तचिन्तामणि—वास्तुप्रकाश

अतः कूप, नलकूप एवं भूमिगत जलाशय का निर्माण भूखण्ड के ईशान कोण, पूर्व, पश्चिम या उत्तर भाग में करना चाहिए। वास्तुशास्त्र का मूल सिद्धांत है, कि भवन का दक्षिण–पश्चिम भाग सदैव उन्नत होना चाहिए और उत्तर, पूर्व भाग नीचा। इसलिए ईशान कोण, उत्तर एवं पूर्व में जलाशय बनाना श्रेष्ठ होता है।

सैप्टिक टैंक

शौचालय से मल–विसर्जन या तो नगर निगम की गटर लाइन के द्वारा या घर में बनाये सैप्टिक टैंक के द्वारा किया जा सकता है। सैप्टिक टैंक के लिए गड्ढा भूखण्ड के वायव्य कोण क्षेत्र में, उत्तर या पश्चिम की ओर या आग्नेय कोण के क्षेत्र में पूर्व की ओर बनाया जा सकता है, यथा–

सैप्टिक टैंक की सही स्थिति



कुछ खास बातें–

(१) सैप्टिक टैंक मकान की दीवार, नींव या चार दीवारी से सटाकर नहीं बनाना चाहिए।

(२) यदि मकान में बेसमेन्ट (तलघर) हो, तो उससे सैप्टिक टैंक का फासला कम से कम ३ हाथ अर्थात ४ फुट ६ इंच होना चाहिए।

(३) सैप्टिक टैंक की लम्बाई पूर्व—पश्चिम में अधिक और उत्तर—दक्षिण में कम होनी चाहिए।

(४) सैप्टिक टैंक की ऊंचाई भूमि के तल तक होनी चाहिए न कि प्लिन्थ लेबल तक।

(५) इसकी नाली उत्तर या पश्चिम की ओर रखनी चाहिए।

भवन की ऊंचाई

भवन की ऊंचाई के बारे में वास्तुग्रन्थों में बतलाया गया है कि भूखण्ड की चौड़ाई के १६वें भाग में ४ हाथ अर्थात ६ फुट जोड़ने पर जितना योग आता है, वह भवन के पहले मंजिल की ऊंचाई होती है। यदि भवन दो या तीन मंजिल का बनाना हो, तो ऊपर की मंजिल की ऊंचाई नीचे की मंजिल की ऊंचाई से १२वॉ भाग कम होती है। यह नियम तीन मंजिले मकान और पांच मंजिले महल के लिए है।

आज महानगरों में जो बहुमंजिले आवासीय या व्यावसायिक भवन बन रहे है, उनमें यह नियम लागू नहीं होता। बहुमंजिले भवनों में फ्लैट बनाने के लिए प्रत्येक मंजिल की ऊंचाई लगभग समान रहती है और यह लगभग ९ या १० फुट के आसपास होती है।

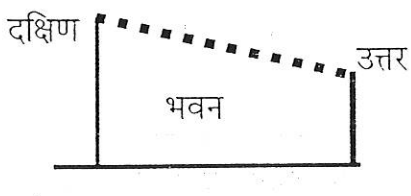
कुछ महत्त्व पूर्ण बातें-

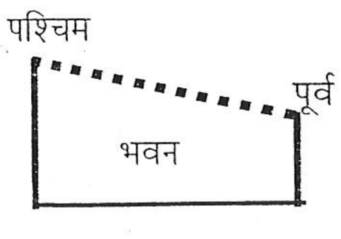
(१) भवन का दक्षिणी भाग हमेशा उत्तरी भाग से ऊंचा होना चाहिए।

(२) भवन का पश्चिमी भाग सदैव पूर्वी भाग से ऊंचा होना चाहिए।

(३) भवन में नैऋत्य सबसे ऊंचा और ईशान सबसे नीचा होना चाहिए।

(४) राजमहल, धर्मस्थल, सभागार एवं स्मारकों की ऊंचाई सभी ओर एक समान रखी जा सकती है।





आठों दिशाओं में भवन के ऊंचा/नीचा होने का फल-

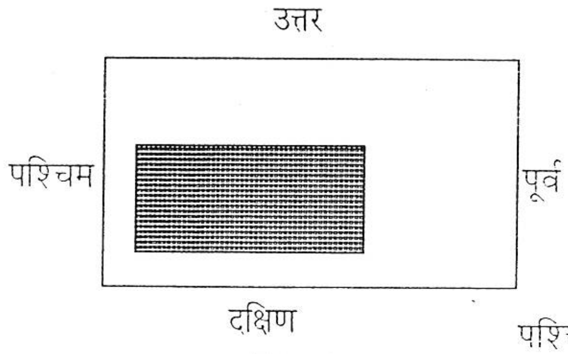
दिशा	नीचा होने पर फल	ऊंचा होने पर फल
पूर्व	यशवृद्धि, दीर्घायु	सन्तान हानि
आग्नेय	(१) नैऋत्य से नीचा हो तो शुभ (२) वायव्य या ईशान से नीचा हो तो अशुभ	(१) नैऋत्य से ऊंचा हो तो अशुभ (२) वायव्य या ईशान से ऊंचा हो तो शुभ
दक्षिण	रोग, आर्थिक संकट	स्वास्थ्य, अर्थलाभ
नैऋत्य	व्याधि, अकाल मृत्यु	सम्पन्ति–वृद्धि
पश्चिम	सन्तान कष्ट, उपद्रव	सन्तान वृद्धि विकास
वायव्य	(१) ईशान से नीचा हो तो रोग दायक (२) अन्यथा शुभ	(१) ईशान से ऊंचा हो तो शुभ (२) अन्यथा अशुभ
उत्तर	सुख एवं समृद्धि	अशान्ति, हानि
ईशान	लाभ एवं कल्याण	हानि एवं शोक

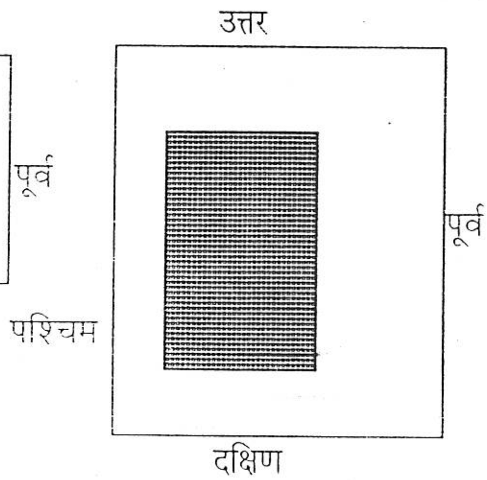
भवन-निर्माण

सार्वजनिक उपयोग के अधिकतर भवन—जैसे स्कूल, कॉलेज, होस्टल, अस्पताल, सरकारी कार्यालय व्यासायिक केन्द्र एवं होटल आदि और कुछ आवासीय भवन कई खण्डों में L, E, U, C, या H जैसे आकार में बनाये जाते हैं। ऐसे भवनों के एक भाग या खण्ड को 'शाला' कहते हैं। इनके शुभाशुभत्व का विचार इस प्रकार है –

यदि भवन एक ही खण्ड (शाला) का बनाना हो तो यह भूखण्ड के पश्चिमी

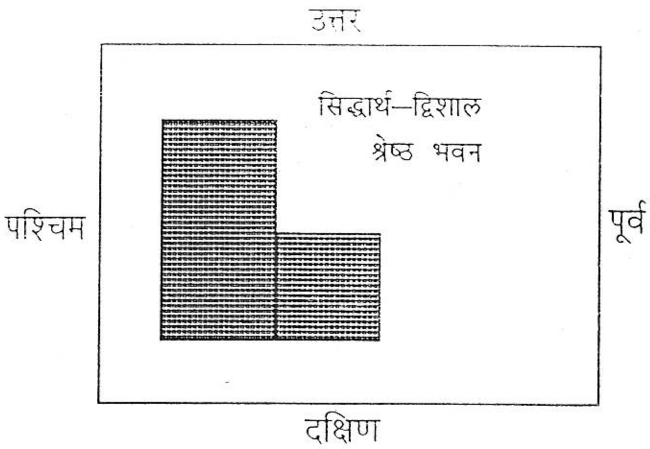
या दक्षिणी भाग में फैला होना चाहिए। अर्थात् पूर्व एवं उत्तर की ओर खुली जगह छोड़कर बनाना चाहिए, यथा–





शुभ एवं अशुभ द्विशाल

यदि भवन दो खण्डों (दो शालाओं) में L के आर में बनाना हो, तो एक भाग पश्चिम में और दूसरा भाग दक्षिण में बनाना सर्वश्रेष्ठ होता है। वराह मिहिर ने ऐसे भवन को "सिद्धार्थ द्विशाल" कहा है, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा समृद्धिदायक होता है[६४]।



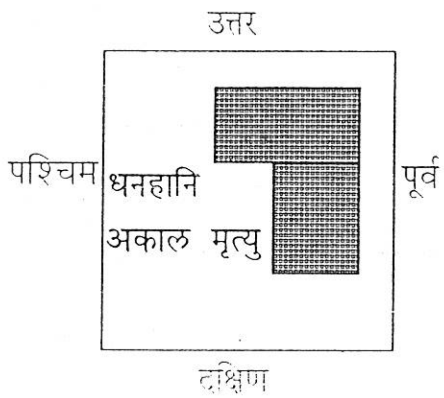
---

६४. देखिए– बृहसंहिता– वास्तुविद्याध्याय

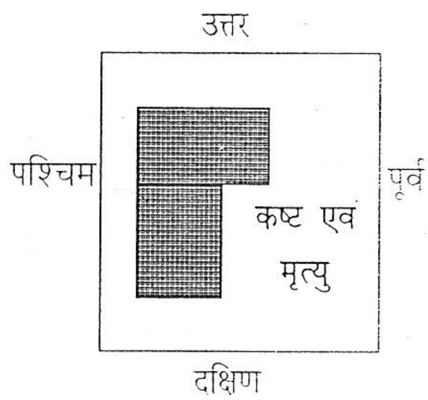
अशुभ द्विशाल भवन

बृहत्संहिता, जो अपने समय का वास्तु का मानक ग्रन्थ है, उसमें अशुभ द्विशाल भवनों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उसके अनुसार अशुभ द्विशाल भवन, उनकी संज्ञाएं तथा फल इस प्रकार हैं –

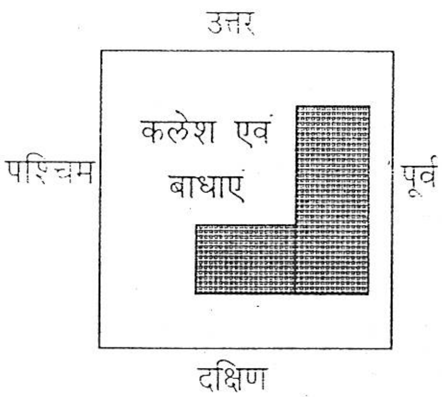
दण्ड द्विशाल



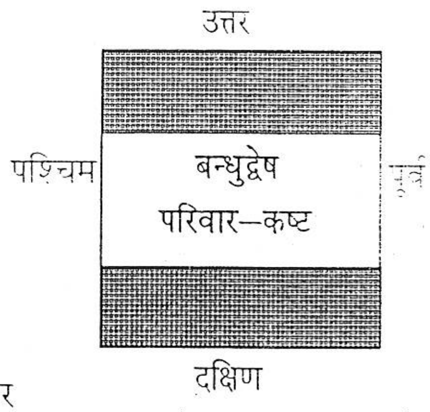
सूर्य द्विशाल



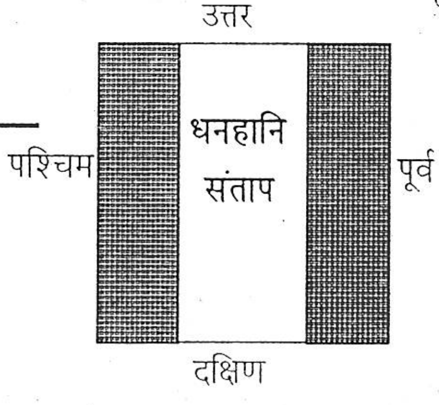
वात द्विशाल



कौच द्विशाल

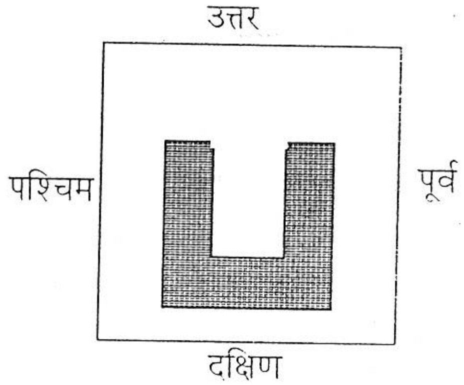


गृह चुल्ली द्विशाल



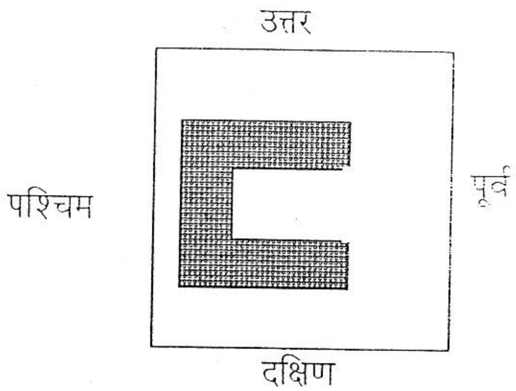
शुभ एवं अशुभ त्रिशाल भवन

हिरण्य त्रिशाल



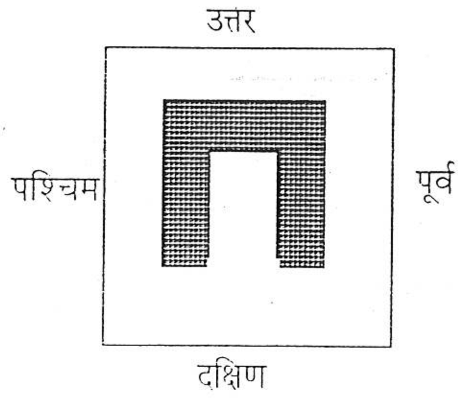
यह "हिरण्य त्रिशाल" नामक भवन श्रेष्ठ एवं शुभ होता है। इस त्रिशाल में उत्तर एवं ईशान का खुला रहना विशेष गुण है।

सुक्षेत्र त्रिशाल



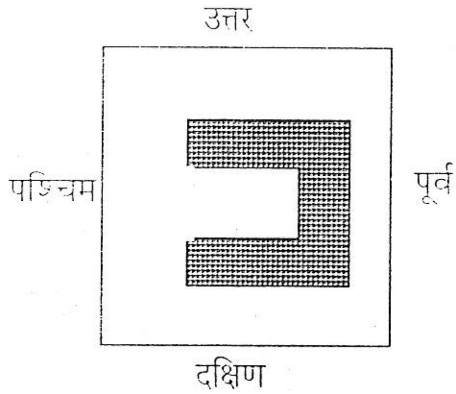
यह सुक्षेत्र त्रिशाल एक उत्तम एवं शुभ निर्माण है। पूर्व एवं ईशान का खुलापन इसका विशेष गुण है।

चुल्ली त्रिशाल



यह चुल्ली त्रिशाल अशुभ निर्माण है। क्योंकि इसमें पूर्व एवं उत्तर दिशाऐं बन्द हैं। यह दरिद्रता एवं क्लेश दायक होता है।

पक्षध्न त्रिशाल



यह पक्षध्न त्रिशाल बहुत अशुभ होती है। क्योंकि इसमें पूर्व, ईशान एवं उत्तर दिशाऐं बन्द हैं। यह धनहानि, शत्रुवृद्धि एवं सन्तान को कष्ट दायक होती है।

वस्तुत : वास्तु शास्त्र में ईशान का बहुत महत्व है। इस दिशा में वास्तु पुरूष का शिर रहता है। अत: निर्माण करते समय इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

भवन का द्वार

भवन का द्वार मकान का दरवाजा ही नही है, यह वास्तु शास्त्र के अनुसार उसमें रहने वाले लोगों की सफलता या असफलता का दरवाजा भी है। प्राचीन वास्तुशास्त्र के आचार्यो का कथन है, कि भवन का निर्माण शास्त्र सम्मत होने पर भी यदि घर का द्वार निषिद्ध स्थान पर हो, तो उसमें रहने वाले लोगों को अनेक समस्या एवं संकटों का सामना करना पड़ता है। अत: भवन के द्वार का निर्णय सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

वास्तुशास्त्र में द्वार का निर्णय राशि, वर्ण, आय एवं वास्तुचक्र के अनुसार किया गया है, यथा–

(1) राशि के अनुसार द्वार की दिशा

राशियाँ	दिशा
मेष, सिंह एवं धनु	उत्तर
वृष, तुला एवं कुम्भ	पश्चिम
मिथुन, कन्या एवं मकर	दक्षिण
कर्क, वृश्चिक एवं मीन	पूर्व

(2) मतान्तर[६५]

वर्ण	राशियाँ	दिशा
ब्राह्मण	कर्क, वृश्चिक, मीन	पूर्व
क्षत्रिय	मेष, सिंह, धनु	उत्तर
वैश्य	वृष, कन्या, मकर	दक्षिण
शुद्ध	मिथुन, तुला, कुम्भ	पश्चिम

६५. पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम्।
शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे मतम्।। –बृहत्वास्तुमाला श्लो.१४९

(3) आय के अनुसार द्वार

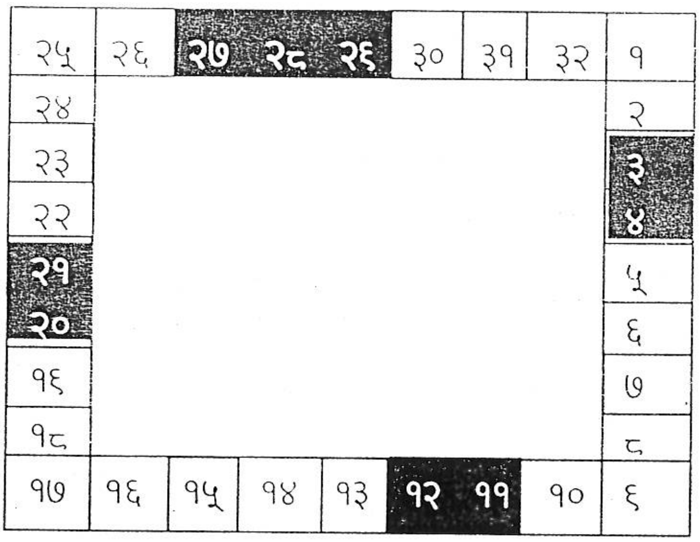
भूखण्ड की लम्बाई को चौड़ाई से गुणाकर आठ का भाग देने पर एक आदि शेष होने पर ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, गौ, खर, गज एवं काक आय होती है[६६]।

आय[६७]	द्वार की दिशाऐं
ध्वज	चारों दिशाऐं
सिंह	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
गज	पूर्व, दक्षिण
गौ	पूर्व

वास्तु मण्डल के अनुसार द्वार

एकाशीति पद या चतुष्षष्ठि पद वास्तु मण्डल बना कर उसके देवताओं के अनुसार द्वार का निर्णय इस प्रकार किया जाता है –

उत्तर



---

६६. विस्तारेण हतं दैर्ध्यं विमजेदष्टमिस्तत:।
यच्देषं स भवेदापो ध्वजाद्यास्तेस्युरष्टधा:।। –टोडरानन्द

६७. सर्वद्वार इहध्वजो वरुणदिग्द्वारं च हित्वा हरि:।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यमसुरेशाशामुख: स्याच्छुभ:।।
–बृहद्वास्तुमाला श्लो.१५०

वास्तुचक्र में पूर्व में क्रम संख्या ३ एवं ४ पर दक्षिण में क्रम संख्या ११ एवं १२ पर पश्चिम में क्रम संख्या २० एवं २१ पर उत्तर में और क्रम संख्या २७, २८ एवं २९ पर द्वार स्थापित करना शुभ होता है। इसके लिए भूखण्ड पर वास्तु चक्र बनाकर द्वार निर्णय करना चाहिए। वास्तुचक्र के चारों दिशाओं के ३२ कोष्ठकों के देवताओं के नाम एवं उनका फल इस प्रकार है –

क्रम संख्या	दिशा	देवता	द्वार स्थापना का फल
१	ईशान	ईश	अग्निमय
२	पूर्व	पर्यन्य	स्त्री पीड़ा
३	पूर्व	जयन्त	धनलाभ
४	पूर्व	इन्द्र	विजय
५	पूर्व	सूर्य	मनस्ताप
६	पूर्व	सत्य	पुत्री–कष्ट
७	पूर्व	भृश	शत्रु भय
८	पूर्व	आकाश	चोर–भय
९	आग्नेय	अग्नि	पुत्र–कष्ट
१०	दक्षिण	पूषा	परिवार–कष्ट
११	दक्षिण	वितथ	कल्याण
१२	दक्षिण	गृहक्षत	पुत्रलाभ
१३	दक्षिण	यम	मृत्यु
१४	दक्षिण	गन्धर्व	अपमान
१५	दक्षिण	मृंगराज	हानि
१६	दक्षिण	मृग	पुत्र कष्ट
१७	नैऋत्य	पितृ	पुत्रनाश

क्रम संख्या	दिशा	देवता	द्वार स्थापना का फल
१८	पश्चिम	दौवारिक	कर्णरोग
१९	पश्चिम	सुग्रीव	अर्थ—संकट
२०	पश्चिम	पुष्पदन्त	मनः तुष्टि
२१	पश्चिम	वरूण	आरोग्य, शान्ति
२२	पश्चिम	असुर	हानि
२३	पश्चिम	शोष	अर्थक्षय
२४	पश्चिम	राजयक्ष्मा	रोग
२५	वायव्य	वायु	मृत्यु
२६	उत्तर	नाग	शत्रु वृद्धि
२७	उत्तर	मुख्य	सन्तति लाभ
२८	उत्तर	भल्लाट	धन वृद्धि
२९	उत्तर	कुबेर	ऐश्वर्य लाभ
३०	उत्तर	शैल	परिजनों का विरोध
३१	उत्तर	अदिति	स्त्री कष्ट
३२	उत्तर	दिति	कार्य बाधा

द्वार स्थापना के अन्य नियम

१. देवस्थान, यज्ञमण्डप, सभागार, सार्वजनिक भवन, स्मारक एवं जैन मन्दिरों में चारों दिशाओं में द्वार बनाये जा सकते हैं।

२. यदि भवन का एक ही द्वार रखना हो, तो पूर्व दिशा में द्वार रखना श्रेष्ठ है।

३. पूर्व एवं पश्चिम तथा उत्तर एवं दक्षिण दिशा में एक सीध में दो द्वार नहीं बनाने चाहिए।

४. द्वार की चौड़ाई उसकी ऊंचाई से आधी होती है।

५. मन्दिर आदि को छोड़कर दीवार के बीचों बीच द्वार नहीं बनाना चाहिए। द्वार के सामने तथा द्वार के ऊपर भी द्वार नहीं बनाना चाहिए।

६. आज नगरों में जो भूखण्ड उपलब्ध हो रहे हैं, उसका द्वार अधिकांशतया एक सड़क पर ही बनाया जा सकता है। अत: इसमें भूखण्ड के स्वामी की राशि या वर्ण के अनुसार निर्धारित दिशा में द्वार बनाना सबके लिए सम्भव नहीं है। अत: वास्तुचक्र के अनुसार सड़क की दिशा में निर्धारित स्थान पर द्वार बनाया जा सकता है।

७. व्यावसायिक, औद्योगिक, सार्वजनिक एवं राजकीय भवनों में वास्तुचक्र के अनुसार द्वार स्थापित करना चाहिए।

८. द्वार के सामने सड़क (राजमार्ग), मन्दिर, वृक्ष, कुँआ, अन्य मकान का कोना एवं स्तम्भ का वेध अशुभ होता है। किन्तु ये भवन की ऊंचाई से दो गुना या अधिक दूरी पर हों, तो दोष नहीं होता।

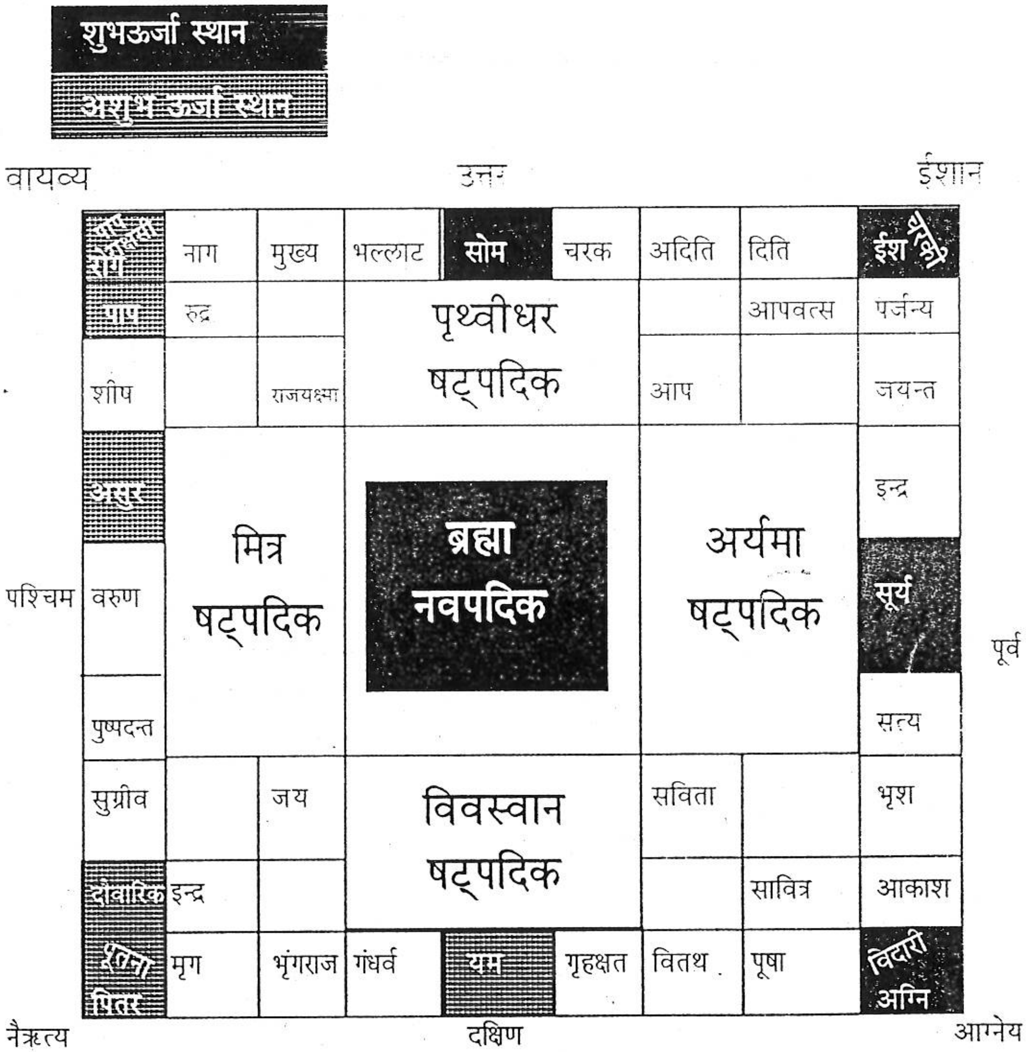
९. भूखण्ड के कटान या विस्तार के भाग में मुख्य द्वार नहीं बनाना चाहिए।

शुभ एवं अशुभ ऊर्जा स्थान

इक्यासी पद वास्तु में जिन स्थानों के स्वामी ईश, अग्नि, सूर्य, सोम एवं ब्रह्मा हैं– भूखण्ड में इनकी दिशा के स्थान शुभ ऊर्जा के स्थान हैं। इन स्थानों पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से रहने वाले के जीवन में शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार होता है। अत: इन स्थानों पर किसी भी प्रकार का निर्माण कर प्रकाश में अवरोध पैदा नहीं करना चाहिए।

इस वास्तुचक्र में जिन स्थानों के स्वामी यम, पितर, द्वारपाल, असुर, पाप एवं रोग है – भूखण्ड के उनकी दिशा के स्थान अशुभ ऊर्जा स्थान है। इन स्थानों पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से नकारात्मक ऊर्जा बढ़ती है, जो जीवन में विक्षोभ एवं उत्पाद पैदा करती है। अतः इन स्थानों को ढ़कना चाहिए। इन स्थानों पर मुख्य भवन का निर्माण न कर पेड़ लगाना या कबाड़ रखना उचित है। पितर एवं द्वारपाल के क्षेत्र में कबाड़ रखना ज्यादा उचित है।

एकाशीति (इक्यासी) पद वास्तुचक्र[६८]



---

६८. देखिए– समराङ्गणसूत्रधार

समरांगन सूत्रधार एवं प्राचीन वास्तुग्रन्थों में प्रतिपादित एकाशीति पद वास्तुचक्र को निर्माणाधीन भूखण्ड पर बनाकर अशुभ एवं शुभ ऊर्जा स्थानों का ज्ञान किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप भूखण्ड के पूर्व, आग्नेय, उत्तर, ईशान एवं मध्य में शुभ ऊर्जा स्थान तथा दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम एवं वायव्य में अशुभ ऊर्जा स्थान होते हैं। शुभ ऊर्जा स्थानों पर सूर्य का प्रकाश पड़ना शुभ और अशुभ ऊर्जा स्थानों पर सूर्य का प्रकाश न पड़ना श्रेयस्कर होता है।

खिड़की, झरोखा / बरामदा

द्वार का निर्णय एवं शुभाशुभ ऊर्जा स्थानों को जानकर उसके अनुसार खिड़कियां एवं झरोखे बराबर बनाये जा सकते हैं। भवन के पूर्व एवं उत्तर भाग में अधिक खिड़किया बनानी चाहिए। पश्चिम एवं दक्षिण में अशुभ ऊर्जा स्थानों को छोड़कर अन्य स्थान पर सुविधानुसार खिड़की बनायी जा सकती है।

खिड़कियों का मूल उद्देश्य कमरों में सही मात्रा में शुद्ध वायु एवं प्रकाश को संचारित करना है। अतः अशुभ ऊर्जा स्थान पर किसी हालात में खिड़की या बरामदा नहीं बनाना चाहिए।

द्वार निर्णय के साथ खिड़कियों के लिए उचित दिशा एवं स्थान का विचार कर लेना चाहिए। मुख्य द्वार के अलावा अन्य सभी द्वारों एवं खिड़कियों के ऊपर किनारे सदैव एक ही सीध में, समान ऊंचाई पर एक सरल रेखा में रखे जाते हैं। मुख्य द्वार के साथ यह नियम नहीं लगता।

आवासीय भवन की पहली/दूसरी मंजिल पर बरामदा बनाना श्रेष्ठ होता है। यह पूर्व या उत्तर दिशा में बनाना चाहिए। जिससे घर में प्रकाश, वायु एवं ऊर्जा का संचार हो। पश्चिम या दक्षिण में बरामदा बनाने से सूर्य की रक्ताभ किरणों के प्रभाववश घर का तापमान बढ़ जाता है। अतः इन दिशाओं में बरामदा नहीं बनाना चाहिए। भूतल पर बरामदा बनाना आवश्यक हो तो तीनों ओर से खुला बरामदा बनाना चाहिए।

ब्रह्म स्थान एवं मर्म स्थान

भारतीय वास्त शास्त्र का मर्म ब्रह्मस्थान एवं मर्म स्थानों में अन्तनिर्हित है। जब से लोगों ने भवन निर्माण में इनका विचार करना छोड़ा है, तब से परिवारों में अशान्ति, तनाव एवं कलेश उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

आज के युग में छोटे–छोटे भूखण्डों पर बने मकान या बहुमंजिले फ्लैटों में अधिकतम जगह का उपयोग करने की मजबूरी और आर्किटेकट, ठेकेदार एवं मिस्त्रियों की वास्तु का ज्ञान न होने की लाचारी के कारण भवन निर्माण में ब्रह्म स्थान एवं मर्म स्थानों की उपेक्षा बढ़ गई हैं। वास्तविकता तो यह है कि आर्किटेक्ट या मिस्त्री को ही नहीं आज आधुनिक वास्तु शास्त्रियों, जो वास्तु शास्त्र के परामर्श का धुआँधार कार्य और प्रचार कर रहे हैं, को भी इनकी ठीक–ठीक जानकारी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में परिणाम क्या होगा। आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं।

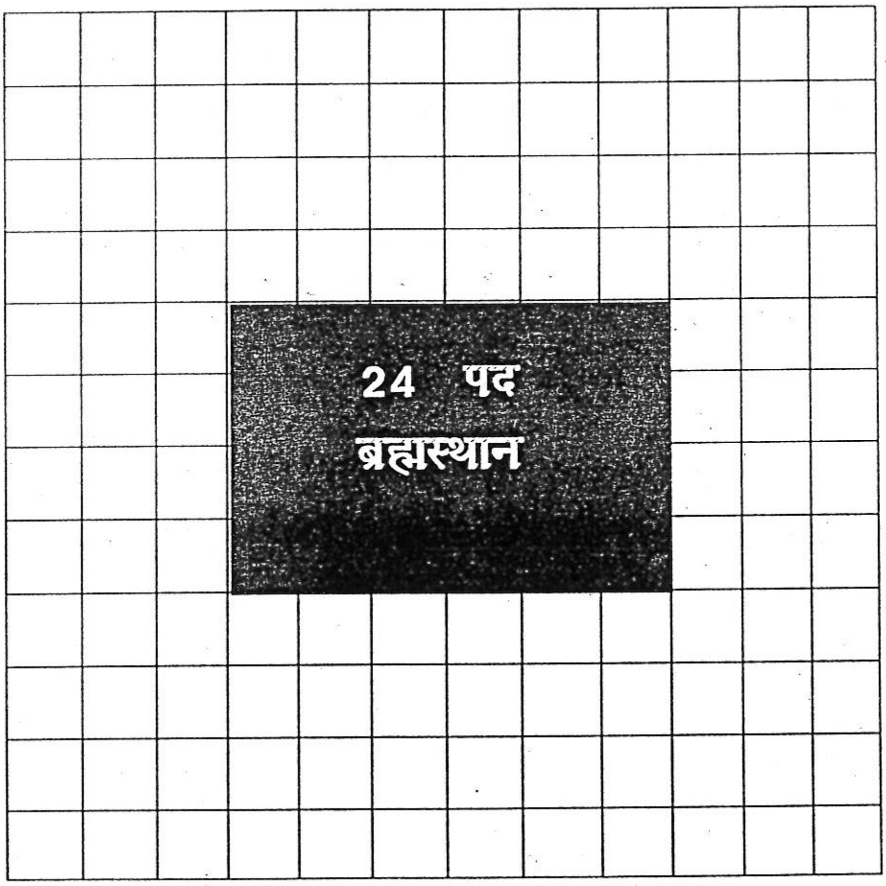
आज मकान में शुद्ध हवा के स्थान पर पंखा, कूलर या एयरकंडीशनर और प्राकृतिक रोशनी की जगह बिजली, इनवर्टर या जनरेटर से प्रकाश व्यवस्था करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। घर या फ्लैट धीरे–धीरे बन्द सन्दूक या गुफा बनते जा रहे हैं। परिणामत: हम प्रकृति से दूर जाकर कृत्रिम जीवन जी रहे हैं। प्रकृति के समीप रहने से स्फूर्ति मिलती है और उससे दूर जाने पर विकृति या विकार मिलता है। यही कारण है कि आज का मानव शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में विकारों का शिकार होने के लिए मजबूर होता जा रहा है।

वस्तुत: वास्तुशास्त्री आपके या आपके परिवार की अभिरूचि या मन मर्जी के अनुसार नक्शा या निर्माण कराने वाला व्यवसायी मात्र नहीं है। वह तो प्राकृतिक ऊर्जा का प्रबन्धन एवं आन्तरिक ऊर्जा के संरक्षण का दायित्व सम्हालने वाला सलाहकार है। अपने इस दायित्व सम्हालने एवं निभाने के लिए ही उसने प्राचीन भारत में ब्रह्म स्थान एवं मर्म स्थानों को अपने चिन्तन का केन्द्र–बिन्दु बनाया था।

आवासीय, व्यावसायिक एवं औद्योगिक वास्तु में ब्रह्म स्थान उसका सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है। एकाशीतिपद (इक्यासी पद) वास्तु में ब्रह्म स्थान में ब्रह्म के नौ पद होते हैं।[६९] जब कि पृथ्वी धर, अर्यमा, विवस्वान एवं मित्र के छः—छः पद होते हैं। इस प्रकार वास्तु चक्र में ब्रह्म से सभी देवताओं का क्षेत्राधिकार कम है। वास्तु पुरूष का उदर, आँते, गुप्तांग एवं जंघाओं की सन्धि ब्रह्म स्थान में पड़ती हैं।

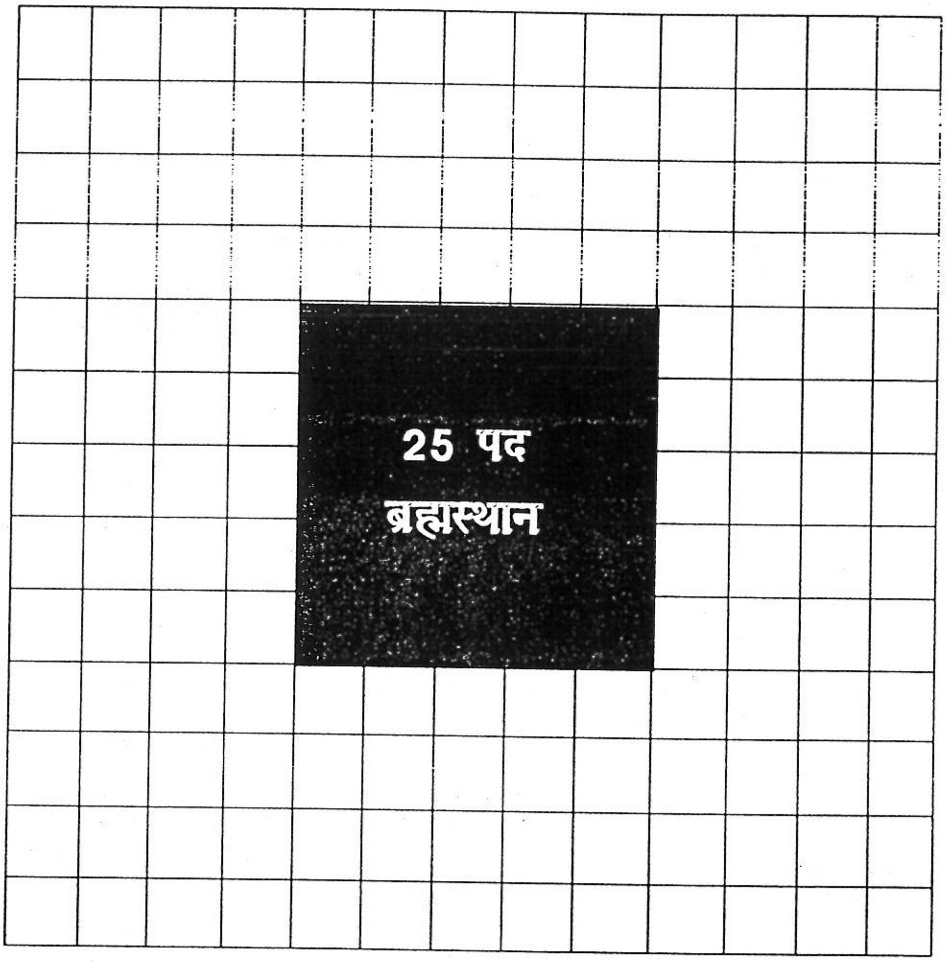
एकाशीति पद में ब्रह्म स्थान भूखण्ड का नौवा भाग है। किन्तु जैसे जैसे भूखण्ड बढ़ता है उसी अनुपात में ब्रह्म स्थान भी बढ़ जाता है। जैसे १४४ पद वस्तु में ब्रह्मा के २४ पद, १६९ पद वास्तु में ब्रह्मा के २५ पद एवं १९६ पद वास्तु में ब्रह्मा के ३६ पद होते हैं, यथा

144 पद वास्तु चक्र में ब्रह्मस्थान

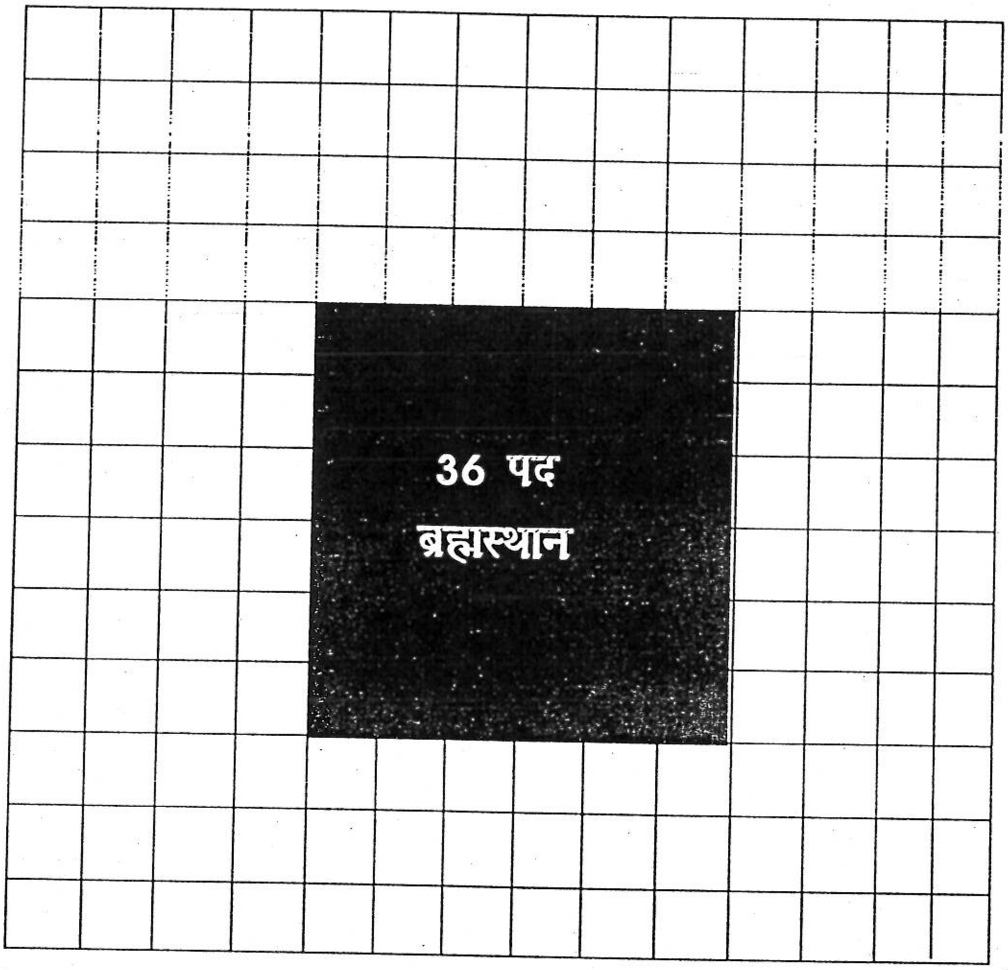


६९. देखिए— शुभाशुभ ऊर्जास्थान

169 पद
वास्तु चक्र में
ब्रह्मस्थान



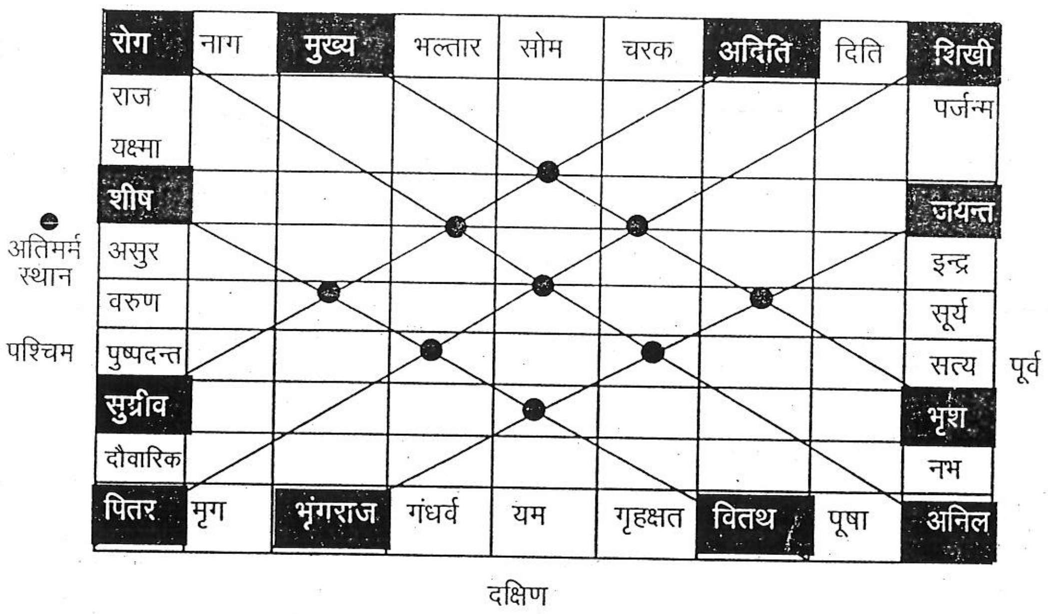
196 पद
वास्तु चक्र में
ब्रह्मस्थान



वास्तु के अधिकांश मर्म स्थान एवं महामर्म स्थान ब्रह्म स्थान के क्षेत्र में आते हैं [७०]। इस स्थान के चारों ओर पृथ्वीधर, अर्यमा, विवस्थान एवं मित्र ये चारो देवता अपने छः–छः पदों से इस स्थान को घेर कर इसकी रक्षा करते हैं। बृहत्संहिता में कहा गया है, कि इस स्थान पर गड्ढ़ा, पानी या गन्दगी इकट्ठी नहीं करनी चाहिए। यहाँ पर घर जूठन, कबाड़ एवं अपवित्र वस्तुएँ नहीं रखनी चाहिए [७१]। इस स्थान पर सफाई रखना, चौक पूरना, रंगौली बनाना और तुलसी का पौध लगाना आदि की प्राचीन परम्परा इस स्थान को निर्मल एवं पवित्र रखने की ओर संकेत करती है।

वास्तु का जो सबसे संवेदन शील स्थान है, वह मर्म स्थान कहलाता है। वास्तुचक्र में रोग से अनिल (अग्नि), पितर से शिखि तक, वितथ से शोष तक, मुख्य से भृश तक, जयन्त से भृंग राज तक और अदिति से सुग्रीव तक सूत्र डालने से इनके कटान बिन्दु अतिमर्म स्थान होते हैं।

(इक्यासीपद वास्तु)



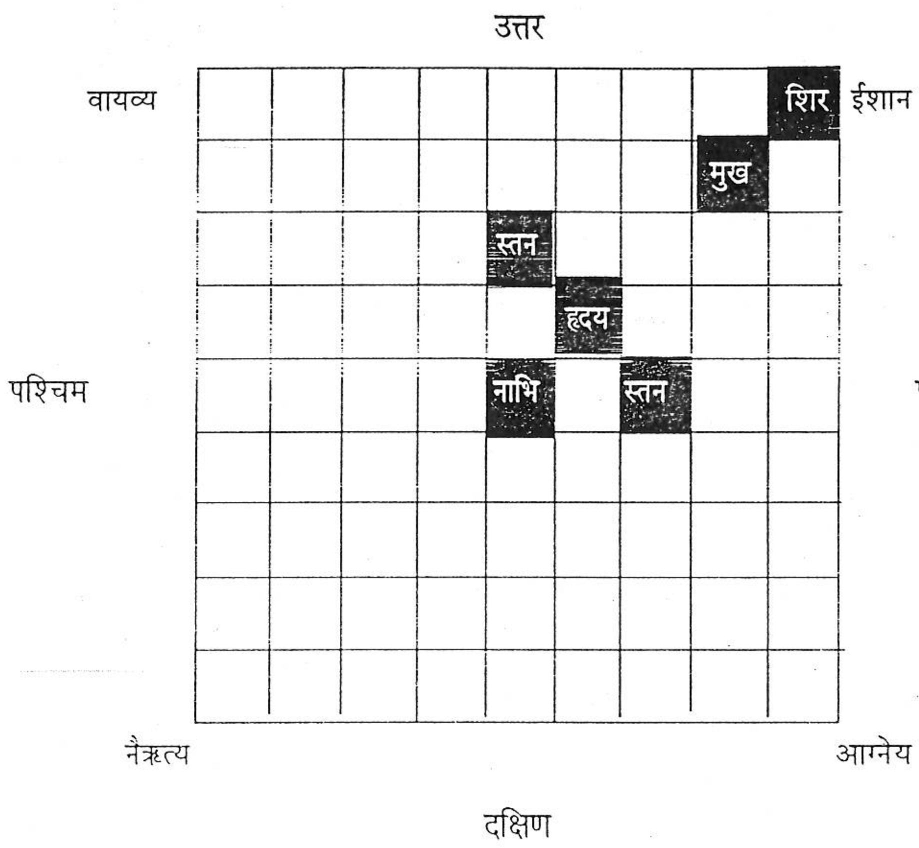
---

७०. छः मर्म स्थानों में से दो और नौ अतिमर्म स्थानों में पाँच इस प्रकार १५ में से ७ स्थान ब्रह्म स्थान में होते हैं।

७१. देखिए– वास्तुविद्याध्याय

समरांगन सूत्रधार के अनुसार वास्तु पुरूष का मुख ह्वदय, नाभि, शिर और दोनों स्तन–ये छः स्थान वास्तु पुरूष के मर्म स्थान होते हैं, यथा–

इक्यासीपद वास्तु



वास्तु में इन मर्म एवं अतिमर्म स्थान पर कोई दीवार, स्तम्भ (कालम), बीम, द्वार, खिड़की, खूंटी, स्टोर, नागदन्त या गवाक्ष (झरोखा) बनाने का निषेध है।

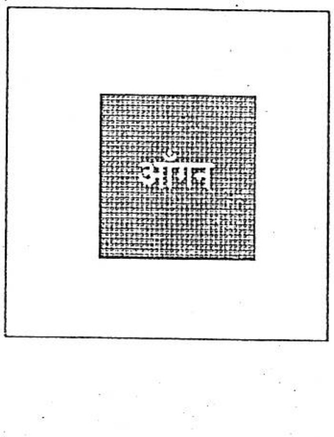
मर्म/अतिमर्म पर निर्मित	फल
द्वार	रोग
खिड़की	कुलपीड़ा
गवाक्ष	घनक्षय
दीवार	कुलहानि
स्तम्भ (कालम)	सर्वनाश
बीम	मनस्ताप
संग्रह (स्टोर)	भ्रातृकष्ट
खूंटी	मित्रहानि
नागदन्त	मृत्यकष्ट

आँगन

ब्रह्म स्थान की रक्षा के लिए आँगन या चौक बनाने की परिपाठी थी, जो आज धीरे–धीरे लुप्त हो रही है। दिल्ली के पुराने इलाके में शाहजहानाबाद की चाहर दीवारी के भीतर आज भी एक, दो, तीन और चार चौक की हवेलियाँ विद्यमान हैं।

वास्तु शास्त्र के अनुसार भवन का मध्य भाग खुला रखना चाहिए। इसके ऊपर छत नहीं डालनी चाहिए और इस भाग में दीवार खम्भा (कालम), बीम या अन्य निर्माण नहीं करना चाहिए। अन्यथा अनेक प्रकार की हानियाँ एवं परेशानियां होती है।

आँगन एक दम समतल नहीं होना चाहिए। वास्तुराज वल्लभ के अनुसार बीच



में नीचा और चारो और ऊंचा आंगन सन्ततिविनाश करता है और बीच में कुछ ऊंचा तथा चारों ओर नीचा आँगन शुभफल दायक होता है।

आँगन के क्षेत्रफल के आधार पर उसके शुभाशुभत्व का निर्णय करने की दो रीतियां प्राचीन ग्रन्थों में मिलती हैं, यथा[७२]—

आँगन की लम्बाई एवं चौड़ाई को गुणा कर ९ का भाग देना चाहिए। इस प्रकार एक आदि शेष होने पर आँगन की निम्न लिखित संज्ञा एवं फल होता है —

शेष	संज्ञा	फल
१	दाता	लाभ
२	विचक्षण	बुद्धि विकास
३	भीरु	भय
४	कलह	क्लेश
५	नृप	सम्मान
६	दानव	कष्ट
७	नपुंसक	वंशक्षय
८	चोर	हानि
९	धनी	सम्पन्नता

प्रकारान्तर से आँगन की लम्बाई एवं चौड़ाई के योग को आठ से गुणा कर नौ का भाग देन चाहिए। यहाँ एक आदि शेष रहने पर इसकी संज्ञाएं एवं फल इस प्रकार हैं —

---

७२. देखिए— (क)— वास्तुरत्नाकर
(ख)— वास्तु राजवल्लभ

शेष	संज्ञा	फल
१	तस्कर	चोरी का भय
२	भोगी	ऐश्वर्य
३	विचक्षण	बौद्धिक विकास
४	दाता	लाभ
५	नृपति	सम्मान
६	नपुंसक	सन्तान हानि
७	धनद	अर्थलाभ
८	दरिद्र	धननाश
९	भयह	शत्रुभय

आवासीय भवन में कक्षों का निर्माण

बृहद् संहिता, नारदसंहिता, वास्तुराजवल्लभ जैसे मानकग्रन्थों में आवासीय भवन को १६ भागों में विभाजित कर विभिन्न दिशाओं में विविध कक्षों के निर्माण का प्रतिपादन किया गया है। भवन की किस दिशा में कौन सा कक्ष बनाना चाहिए? इस विषय में सर्वसम्मत पक्ष इस प्रकार है—

	दिशा	कक्ष
१.	ईशान	पूजाकक्ष
२.	ईशान और पूर्व के मध्य	भण्डार गृह
३.	पूर्व	स्नानघर
४.	आग्नेय एवं पूर्व के मध्य में	दधिविलोडन कक्ष
५.	आग्नेय	रसोई घर
६.	आग्नेय एवं दक्षिण के बीच	घी--तेल संग्रह कक्ष
७.	दक्षिण	शयनकक्ष
८.	दक्षिण एवं नैऋत्य के बीच	शौचालय
९.	नैऋत्य	शस्त्र एवं भारी वस्तुओं का भण्डार
१०.	नैऋत्य एवं पश्चिम के बीच	अध्ययन कक्ष
११.	पश्चिम	भोजन कक्ष
१२.	पश्चिम एवं वायव्य के बीच	रोदन गृह
१३.	वायव्य	पशुशाला
१४.	वायव्य एवं उत्तर के बीच	रतिगृह
१५.	उत्तर	कोषागार
१६.	उत्तर एवं ईशान के बीच	औषधि कक्ष

इन कक्षों के बीचों बीच में खुला आंगन या चौक रखा जाता है। यह स्थान परिवार के लोगों के साथ--साथ मिलजुल कर बैठने तथा पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न करने के उपयोग में आता है, यथा--

आवासीय भवन में कक्ष

उत्तर

वा. ई.

<table>
<tr><td>पशुशाला</td><td>रतिगृह</td><td>कोषांगार</td><td>औषधि कक्ष</td><td>पूजाघर</td></tr>
<tr><td>रोदनगृह</td><td colspan="3" rowspan="3">आँगन
(खुला)</td><td>भण्डारगृह</td></tr>
<tr><td>भोजनकक्ष</td><td>स्नानघर</td></tr>
<tr><td>अध्ययन कक्ष</td><td>दधिमंथन कक्ष</td></tr>
<tr><td>शस्त्र,उपकरण भण्डार</td><td>शौचालय</td><td>शयनकक्ष</td><td>घी तेल भण्डार</td><td>रसोईघर</td></tr>
</table>

पश्चिम पूर्व

नै० आ०

दक्षिण

आज के समय में इन १६ कक्षों की न तो आवश्यकता है और छोटे–छोटे भूखण्डों पर अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मध्यम वर्गीय व्यक्ति को इतने कक्ष बनाना सम्भव भी नहीं है। आज के सन्दर्भ में एक सम्पन्न व्यक्ति भवन बनाना चाहे तो वास्तु शास्त्र के अनुसार भवन में कक्षों को इस प्रकार रखा जा सकता है–

अद्यतन सन्दर्भ में कक्षों का विन्यास

अन्न भंडार पशुशाला	कोषागार	पूजाघर
भोजनकक्ष	खुला आँगन	स्नानघर
भण्डार	शयनकक्ष	रसोईघर

पूजाघर

आवासीय भवन में पूजा, उपासना या आराधना के लिए ईशान कोण में पूजागृह बनाया जाता है। कहते हैं कि इस दिशा के स्वामी भगवान शिव है।, जो ज्ञान एवं विद्या के अधिष्ठाता हैं।

तीज त्यौहार एवं विशेष अवसरों की पूजा, कथा एवं यज्ञ आदि घर के आँगन में किये जाते हैं, क्योंकि यह ब्रह्मा जी का स्थान है, जिनके मुख से चारों वेदों का उपदेश हुआ है। फिर भी दैनिक पूजा या नित्य नियम के लिए ईशान कोण में पूजाघर बनाना उचित है। दैनिक पूजा में जिन मन्त्रों का जप किया जाता है, उनके उपदेशक या आदि गुरु भगवान शिव हैं।

ईशान में पूजागृह की स्थापना के पीछे एक कारण यह भी है, कि प्रातः कालीन सूर्य की पवित्र एवं स्वास्थ्यप्रद रश्मियों इस दिशा/ भाग को शुद्ध एवं पवित्र करती हैं।

पूजा घर में देवी देवताओं की मूर्तियाँ या चित्र पूर्व या उत्तर की ओर दीवार के पास रखने चाहिए। इन्हें काठ की चौकी या सिंहासन पर रखना उचित है। पूजा घर के पूर्वी या उत्तरी भाग में देवताओं की मूर्ति या चित्रों का मुख उत्तर की ओर नहीं रखना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से पूजा करने वाले का मुख दक्षिण की ओर हो जायेगा, जो अनुचित है।

दक्षिण दिशा में पूजाघर नहीं बनाना चाहिए। और अपने शयन कक्ष में देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित नहीं करती चाहिए। पूजा गृह के ऊपर–नीचे या आस–पास में शौचालय या स्नानघर नहीं बनाना चाहिए।

पूजा के कमरे में दीपक रखने का स्थान, हवन कुण्ड या यज्ञवेदी आग्नेय कोण में बनानी चाहिए। पूजा का सामान रखने के लिए आलमारी पश्चिम या दक्षिण की ओर दीवार में बनानी चाहिए। पूजा घर के दरवाजे पर दहलीज अवश्य बनानी

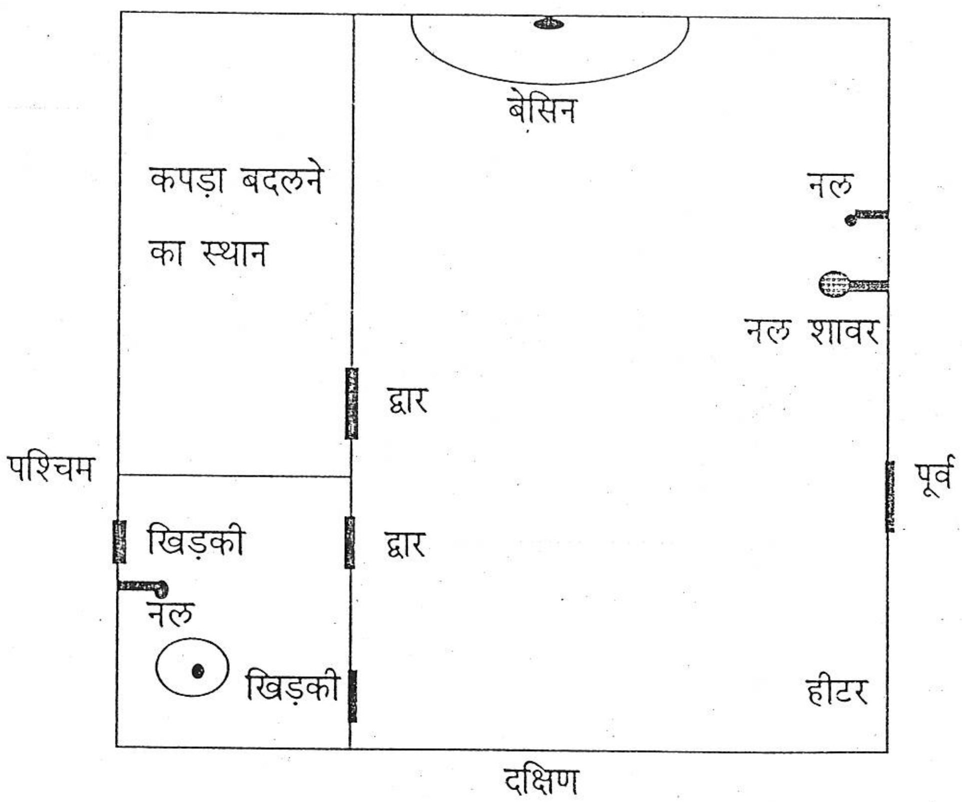
चाहिए और दरवाजे के कपाट (किवाड़) अच्छी लकड़ी के और दो पल्ले वाले होने चाहिए।

स्नानघर

स्नानघर पूर्व की ओर बनाना श्रेष्ठ होता है। क्योंकि प्रात: स्नान करते समय खुले शरीर पर सूर्य की रश्मियाँ पड़ेगी, जो स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

स्नानघर के नैऋत्य में टायलेट पूर्व में शाँवर एवं नल की टूँटी, आग्नेय में हीटर और उत्तर या दक्षिण में सुविधानुसार बेसिन लगाना चाहिए। बाथरूम में खिड़कियाँ एवं रोशनदान पूर्व एवं उत्तर दिशा में लगाये जाते हैं। खिड़कियाँ कुछ ऊपर उठाकर लगायी जाती हैं, ताकि ओट रखें और सूर्य की किरणों का पर्याप्त प्रकाश मिल सके।

वास्तु सम्मत स्नान घर



रसोई घर

रसोई घर भवन के आग्नेय कोण में बनाना उत्तम होता है। इस दिशा के स्वामी अग्नि देवता है। अत: रसोई बनाने के लिए यह सर्वोत्तम स्थान है। यदि किसी कारणवश आग्नेय में रसोई घर बनाना सम्भव न हो, तो पूर्व में बनाया जा सकता है। किन्तु अन्य कोणों में नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि ईशान में रसोईघर बनाने से खान—पान का खर्चा बढ़ताजा है और खान—पान की चीजों का अपव्यय होता है। जब कि वायव्य या नैऋत्य में रसोई घर बनाने से हानि, परेशानी और अग्नि दुर्धटना का भय रहता है।

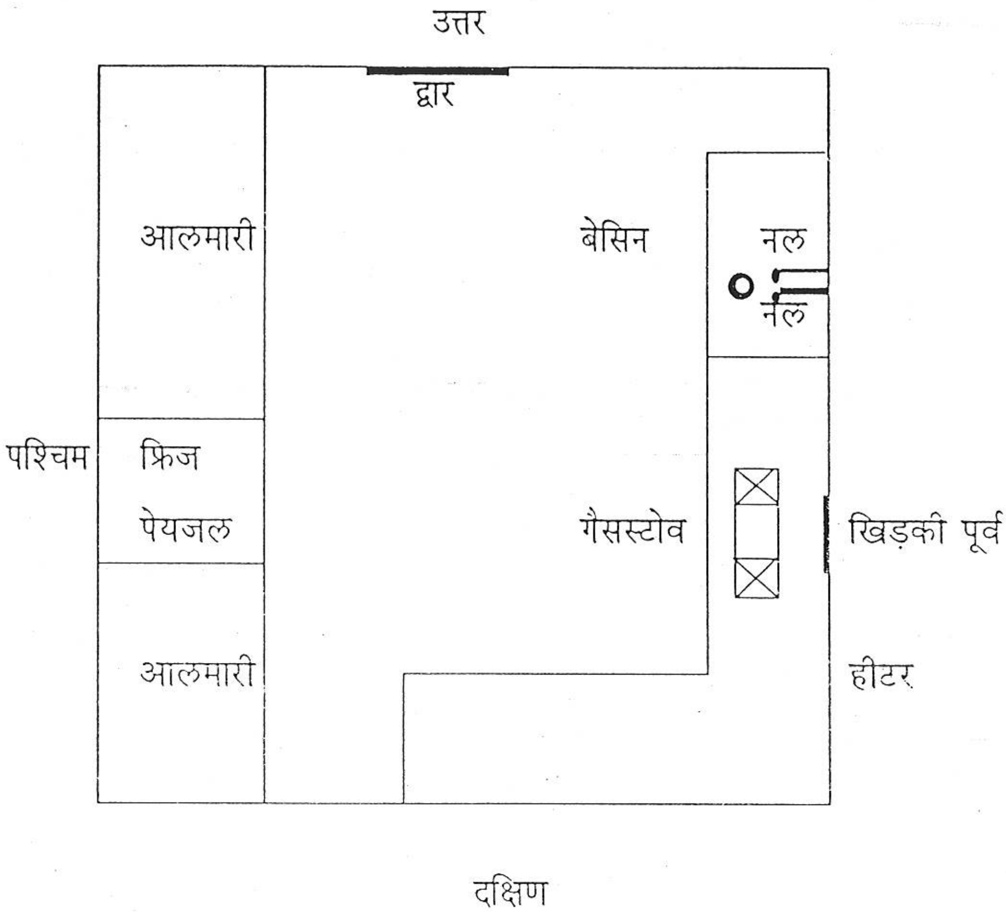
रसोई घर में चूल्हा, बर्नर, स्टोब या ओवन आदि अग्नि कोण/पूर्व में रखने चाहिए। इसके लिए पत्थर की टाँड (स्लैव) पूर्व की दीवार के सहारे बनानी चाहिए, ताकि भोजन बनाते समय गृहणी का मुख पूर्व की ओर रहे।

रसोई घर में जल का भण्डार नल की टूँटी एवं वाश—बेसिन ईशान कोण में, फ्रिज रखना आवश्यक हो तो पश्चिम दिशा में रखना चाहिए, और हीटर आग्नेय कोण में लगाना चाहिए।

मिक्सी, टोस्टर, आटाचक्की एवं अन्य उपकरण पश्चिम—उत्तर में, आटा दाल, मसाले एवं खाद्य सामग्री पश्चिम या दक्षिण में आलमारी बनाकर रखना चाहिए। सामान रखने के दुछत्ती आदि बनवानी हो, तो पश्चिम एवं दक्षिण दिशा उपयुक्त होती है।

रसोई घर से पानी का निकास पूर्व, उत्तर या वायव्य की ओर से करना उचित होता है। दक्षिण दिशा की ओर नाली नहीं बनानी चाहिए। रसोई घर हर हालत में पूजाघर, शयनकक्ष एवं शौचालय/स्नानघर के ऊपर या नीचे नहीं बनाना चाहिए।

वास्तुसम्मत - रसोईघर



शयनकक्ष

मकान के मुखिया का शयनकक्ष दक्षिण में और युवा दम्पत्ति का शयनकक्ष वायव्य एवं उत्तर के बीच में बनाया जाता है। बच्चों का कमरा वायव्यकोण में बनाया जा सकता है। किन्तु ईशान या आग्नेय कोण में शयनकक्ष कभी भी नहीं बनाना

चाहिए। क्योंकि ईशान कोण में बेडरूम बनाने से धन हानि, काम में बाधा और कन्या के विवाह में विलम्ब तथा आग्नेय में बनाने से दाम्पत्य कलह, अनिद्रा एवं चिन्ताएँ घेरती है।

आवश्यकता होने पर परिवार के सबसे बड़े/वयोबृद्ध या मुखिया शयनकक्ष उत्तर में बनाया जा सकता है। यदि मकान दो या अधिक मंजिल का हो तो मकान की पहिली मंजिल पर नैऋत्यकोण में परिवार के मुखिया या बुजुर्ग का शयन कक्ष बनाया जाता है। यह कक्ष परिवार के सबसे बड़े पुत्र के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। किन्तु छोटे लोगों एवं बच्चों के लिए नहीं।

यदि कोणों पर बने भूखण्ड पर मकान बना हो, तो शयन कक्ष में पलंग इस प्रकार लगाया जाय कि पैर आग्नेय और नैऋत्य में न फैले। सामान्यतया पलंग का सिरहना पूर्व या दक्षिण की ओर रखना उत्तम होता है। इससे सौर एवं चुम्बकीय ऊर्जा से शक्ति, मिलती है।

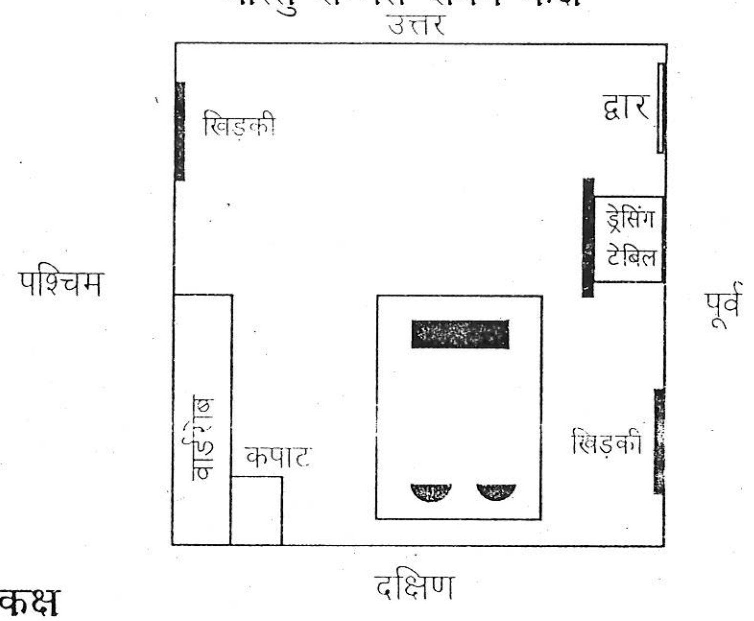
शयनकक्ष का द्वार दक्षिण में नहीं खुलना चाहिए। इस कक्ष में खिड़कियाँ पूर्व एवं उत्तर दिशा में होनी चाहिए। यदि शयनकक्ष के साथ शौचालय/स्नानागार संलग्न करना हो तो उत्तर या पश्चिम में बनाना चाहिए। शयन कक्ष का नैऋत्य कोना खाली नहीं रखना चाहिए। इस कोणे में आलमारी या भारी फर्नीचर रखना चाहिए।

शयन कक्ष में मन्दिर या पूजा का स्थान नहीं बनाना चाहिए। केवल अपने इष्टदेव या कुल देव का चित्र टाँग सकते हैं। शयन कक्ष में पलंग के ऊपर छत की वीम या मोटी पट्टी नहीं होनी चाहिए। नगदी-आभूषण एवं मूल्यवान वस्तुएँ

रखने के लिए तिजोरी इस कक्ष की पश्चिमी या दक्षिणी दीवार के सहारे या दीवार में इस प्रकार रखें कि वह उत्तर या पूर्व की ओर खुले। दक्षिण की ओर तिजोरी के खुलने से धन का क्षय होता है और पश्चिम की ओर खुलने से बचत नहीं होती।

शयन कक्ष में टी.वी, हीटर, हीटकन्वेन्टर आदि आग्नेय कोण में, कूलर/एयर कण्डीशनर पश्चिम व उत्तर में, वार्ड रोब (वस्त्रों की अलमारी) नैऋत्य या वायव्य में लिखने-पढ़ने की टेबुल पश्चिम में और ड्रेसिंग टेबुल पूर्व में लगानी चाहिए।

वास्तु सम्मत शयन कक्ष



भोजनकक्ष

प्राचीनकाल में रसोई घर में ही बैठकर भोजन करने का प्रचलन था। और आज रसोई घर के पास भोजन करने के लिए डाइनिंग टेबिल लगाकर खाने का प्रचलन है। आमतौर पर ड्राईंग रूम के एक भाग में रसोई के समीप डाइनिंग टेबिल लगा ली जाती है। यह तीन-चार कमरों के छोटे घर की देन है।

यदि व्यक्ति का सामर्थ्य हो और वह अलग से भोजन कक्ष बना सके, तो यह कक्ष भवन के पश्चिम में बनाना सर्वोत्तम है। भोजन कक्ष का द्वार पूर्व, उत्तर या पश्चिम में होना चाहिए। दक्षिण में कदापि नहीं।

इस कक्ष में भोजन करते समय प्रमुख लोगों का मुख पूर्व की ओर तथा अन्य लोगों का मुख उत्तर एवम् पश्चिम की ओर होना चाहिए। किन्तु दक्षिण की ओर मुख करके नहीं बैठना चाहिए। भोजन के लिए डाइनिंग टेबिल चौकोर (आयताकार/वर्गाकार) होनी चाहिए। गोल या अण्डाकार टेबिल शुभ नहीं होती।

अध्ययन कक्ष

अध्ययन कक्ष के लिए पश्चिम एवं नैऋत्य के बीच की जगह सर्वश्रेष्ठ होती है। यह स्थान बुध एवं गुरू का होता है। बुध बुद्धि का एवं गुरू ज्ञान का प्रतिनीधि ग्रह है। इसलिए उनका स्थान होने के कारण यह जगह अध्ययन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

इस कक्ष का द्वार पूर्व, पश्चिम या उत्तर में रखा जा सकता है और खिड़कियां पूर्व एवं उत्तर दिशा में ठीक रहती हैं। दक्षिण दिशा में द्वार एवं खिड़कियॉ नहीं बनानी चाहिए।

अध्ययन के लिए कुर्सी एवं मेज पूर्व या उत्तर की ओर रखनी चाहिए। पुस्तकों की अलमारियॉ आग्नेय या नैऋत्य को छोड़कर सुविधानुसार कहीं भी लगायी जा सकती हैं।

अध्ययन करते समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। इस कक्ष में ईशान के कोने में पूर्व दिशा की दीवार पर अपने इष्टदेव/गुरूदेव की मूर्ति/चित्र रखना उपयुक्त होता है।

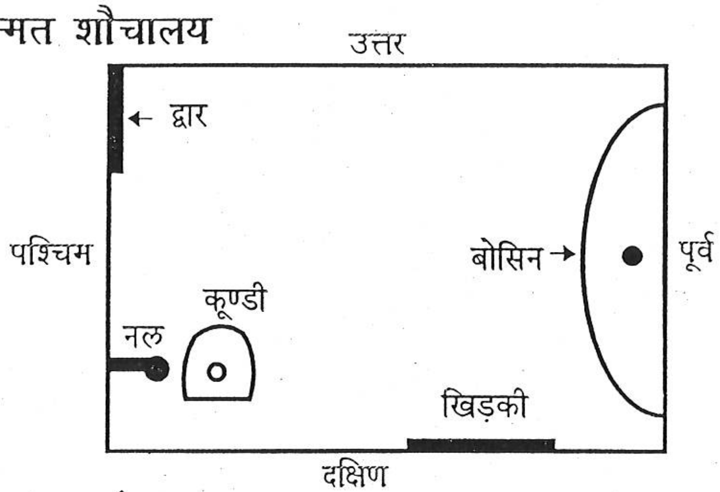
शौचालय

नैऋत्य एवं दक्षिण के बीच में शौचालय के लिए सबसे उपयुक्त स्थान माना जाता है। अतः शौचालय यहीं बनाना चाहिए। किंतु गटर लाइन नहीं और सैप्टिक टैंक बनाना हो या अन्य कक्ष के साथ संलग्न शौचालय बनाना हो, तो पश्चिम या उत्तर दिशा में वायव्य कोण के निकट बनाये जा सकते हैं। किन्तु ईशान, आग्नेय, पूर्व एवं भवन के मध्य में कदापि शौचालय नहीं बनाना चाहिए।

शौचालय का द्वार एवं खिड़कियाँ दक्षिण दिशा को छोड़कर पूर्व, उत्तर या पश्चिम की ओर बनायी जा सकती है। शौचालय में कूण्डी (डब्ल्यू.सी) उत्तर या दक्षिण में इस प्रकार लगानी चाहिए कि मल-मूत्र त्याग के समय व्यक्ति का मुँह उत्तर या दक्षिण की ओर रहे। शौच के समय बैठने पर व्यक्ति का मुँह पूर्व की ओर होना निषिध्द है।

शौचालय में संगमरमर का उपयोग नहीं करना चाहिए। चाहें तो सिरेमिक टाइल, जो रफ हो लगाये जा सकते हैं। शौचालय में पानी का नल या पात्र पूर्व, पश्चिम या ईशान में रखना उचित है। आग्नेय या नैऋत्य में नहीं रखना चाहिए। इसके फर्श का ढलान ईशान, पूर्व या उत्तर की ओर रहना चाहिए। शौचालय के सैप्टिक टैंक का गड्ढा कभी भी दक्षिण दिशा में खोदना/बनाना नहीं चाहिए।

वास्तुसम्मत शौचालय



अन्नभण्डार एवं पशुशाला

कुछ वर्षो पहले तक अपनी एक साल की जरूरत के मुताबिक खाद्यान्न, मसाले, घी, तेल एवं अन्य सामान खरीदकर रखने का प्रचलन था। आज भी हमारे देश के छोटे नगरों, कस्बों एवं देहात में यही प्रचलन है। किसानों के लिए तो अन्न के भण्डार की हमेशा आवश्यकता रहेगी और उनके पशुओं के लिए पशुशाला भी आवश्यक है। केवल महानगरों में जगह की कमी के कारण महीने भर के राशन का प्रचलन है। वैसे घर में एक भण्डार (स्टोर) की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

खाद्यान्न के भण्डारण अथवा पशुशाला के लिए वायव्य कोण का उपयोग किया जाता है। यहाँ भण्डार बनाने से भण्डार सदैव भरापूरा रहता है। इस कक्ष में दुछत्ती बनानी हो, तो दक्षिण या पश्चिम में बनायी जा सकती है। इसका द्वार नैऋत्य को छोड़कर अन्य किसी दिशा में हो सकता है। इसके खिड़की और रोशन दान पूर्व या पश्चिम में रखने चाहिए।

इस कक्ष के वायव्य कोण में रोजमर्रा के काम में आने वाला सामान, आग्नेय के कोने में, ईंधन गैस सिलेंडर एवं बिजली का सामान नैऋत्य कोण में, सालभर के लिए खाद्यान्न की बोरियॉ ड्रम और आग्नेय से थोड़ा हटकर

दक्षिण में घी-तेल आदि रखना चाहिए।

इस कमरे में खाली ड्रम, डिब्बे एवं बरतन नहीं रखने चाहिए और रात्रि को सोना नहीं चाहिए।

कोषागार

नगदी एवं बहुमूल्य वस्तुएँ (आभूषण आदि) को रखने के लिए भवन की उत्तर दिशा में कोषागार बनाना उचित होता है। किंतु कोषागार कभी भी भण्डार के साथ नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि इन दोनों की प्रकृति में अन्तर है। भण्डार में रखी वस्तुएँ प्रतिदिन या दिन में कई बार रखी-निकाली जाती हैं, जब कि कोषागार में कभी-कभी कुछ रखने या निकालने की आवश्यकता होती है।

इस कक्ष में केवल एक मजबूत द्वार होता है, जो पूर्व या उत्तर दिशा में रखा जाता है। इसमें खिड़की या रोशनदान नहीं होते।

कोषागार में तिजोरी या बहुमूल्य वस्तुऐं रखने की आलमारी दक्षिणी दीवार के साथ इस प्रकार रखनी चाहिए की वह उत्तर की ओर खुले। तिजोरी या तो दिवार में लगा देनी चाहिए या दीवार से २-३ इंच के अन्तर पर रखनी चाहिए। तिजोरी या आलमारी कक्ष के ईशान कोण में कभी भी नहीं रखनी चाहिए। इससे धन का नाश होता है। और वायव्य कोण में रखने से धन की हानि होती है।

सेफ में बर्तन, कपड़े एवं सुगन्धित इत्र बगैरह नहीं रखने चाहिए। यदि सेफ/तिजोरी दीवार में लगी हो तो मूल्यवान सामान सबसे ऊपर के खाने में नहीं रखना चाहिए।

भारी या कम उपयोगी सामान का भण्डार

घर में बहुत सा सामान इस प्रकार का होता है, जो कभी-कभी काम में आता है। ऐसे औजार, उपकरण, लोहे के ड्रम, कन्टेनर, लकड़ी, प्लास्टिक या एल्यूमोनियम की वस्तुएँ, बिजली का सामान, ईंट, टाइल, सीनेटरी, हार्डवियर का सामान, घरेलू मशीनों के स्पेयर पार्टस् एवं रंग रसायन आदि ऐसी चीजें हैं, जिनकी यदा-कदा जरूरत पड़ती है। इन सब चीजों को रखने के लिए एक कमरा, जो साइज में एक छोटी कोठरी जैसा हो, नैऋत्य कोण में बनाया जाता है।

इसका द्वार ईशान आग्नेय या दक्षिण को छोड़कर सुविधानुसार अन्य दिशा में बनाया जा सकता है। इसमें केवल एक खिड़की या रोशनदान पर्याप्त होता है। यह पश्चिमी दीवार पर बनाया जाय, तो उचित रहता है। इस को छोटा बनाना इसलिए भी जरूरी है, कि इसमें किसी भी व्यक्ति को नहीं रहना चाहिए। क्योंकि इसमें रहने पर व्यक्ति का स्वभाव क्रोधी, जिद्दी, चिड़चिड़ा एवं झगड़ालू हो जाता है।

रोदन/दण्ड गृह

परिवार में किसी मृत्यु या ऊँचनीच होने पर बैठक या शौक अभिव्यक्त करने के लिए यह कक्ष भवन के पश्चिम और वायव्य के बीच में बनाया जाता है। इसका उपयोग किसी को दण्ड देने के लिए भी किया जाता है। इस कक्ष का उपयोग किसी अच्छे या शुभ कार्य के लिए नहीं किया जाता।

यह कक्ष केतु एवं शनि के क्षेत्र में बनता है। अतः शुभ कार्यों के लिए वर्जित है। वायव्य कोण के समीप होने के कारण इस कक्ष की गतिविधियाँ में तेजी से परिवर्तन या बदलाव आता है। अतः इसका उपयोग दुःख, शोक एवं

परिवार की गम्भीर समस्याओं पर विचार करने या रोने-धोने के लिए किया जाता है, ताकि इन विपरीत परिस्थितियों से परिवार एवं उसके सदस्यों को शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति मिल सके।

औषधिकक्ष

घरेलू नुस्खों से दवाई बनाने, दवाइयों को रखने और संक्रामक रोग से ग्रस्त पारिवारिक सदस्य के विश्राम के लिए मकान के उत्तर और ईशान के बीच में औषधिकक्ष बनाया जाता है। उत्तर-पूर्व में होने के कारण प्रातः कालीन सूर्य की किरणें इसमें रखी औषधियों और विश्राम करने वाले व्यक्ति को सशक्त बनाती है। इन रश्मियों की जीवाणु नाशक क्षमता रोगों के वायरस को नष्ट करती है। फलतः इस कक्ष में रखी *औषधि और विश्राम* करने वाला रोगी जल्दी ही रोग के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। यह परिवार का एक प्रकार का *''फर्स्ट एड सेन्टर''* है। इस कक्ष का सदैव हारी-बीमारी के लिए उपयोग न आने के कारण अन्य कार्यों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

सूतिका गृह

पहिले संयुक्त परिवारों में प्रसव दाइयों की देखरेख में प्रायः घर में ही कराया जाता था। आज प्रसव घर के बजाय अस्पताल एवं नर्सिंग होम में होता है। गाँव-देहात में जहाँ अस्पताल या नर्सिंग होम की सुविधा नहीं है, वहाँ लोग प्रसव के लिए प्रसूतिका को पास के नगर/कस्बे के अस्पताल ले जाते हैं अथवा घर में दाइयों की देखरेख में प्रसव की व्यवस्था करते हैं। प्रसव के बाद एक महीना या सवा महीना तक प्रसूतिका की परिचर्या के लिए भी एक कमरे की आवश्यकता होती है। इन सब कार्यों के लिए घर के ईशान एवं पूर्व के बीच

में सूतिका गृह बनाया जाता है। मतान्तर से यह नैऋत्य कोण में भी बनाया जा सकता है।

इस कक्ष का प्रसूतिकाल के अलावा अन्य दिनों में अन्य प्रकार से उपयोग किया जा सकता है।

दधिमन्थन गृह

पहिले घर में गाय-भैंस रखने का रिवाज था। इससे परिवार के लोगों को दूध, दही, छाछ, मक्खन एवं घी आदि मिलता था। उन दिनों घर में गाय भैंस पालना स्टेटस-सिम्बल था। अत: गाय-भैंस के दूध-दही का भण्डार एवं दही बिलोकर मक्खन/घी निकालने के लिए एक कमरा पूर्व एवं आग्नेय कोण के बीच बनाया जाता है।

आजकल लोगों के घरों में परिवार एवं रिश्तेदारों के लिए ही जगह की कमी है। परिणामत: गाय-भैंस पालने और दही-मठा बिलोने का रिवाज ही समाप्त प्राय: है। इसलिए जहाँ इसकी आवश्यकता हो वहाँ इस कमरे को दूध, दही, मक्खन एवं घी के लिए और जहाँ आवश्यकता न हो वहां भोजन आदि के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

घी-तेल भण्डार

पुराने दिनों में संयुक्त परिवार की व्यवस्था में कम से कम वर्षभर के लिए खाद्यान्न एवं घी-तेल खरीदकर उसका भण्डार करने का प्रचलन था। इसके लिए एक कमरे का प्रावधान आग्नेय एवं दक्षिण के मध्य किया गया है। आज महीने भर का राशन-पानी मंगाने के जमाने में इसका उपयोग अन्य कार्यों के लिए किया जा सकता है।

रतिगृह

नवदम्पति के शयन के लिए एक कमरा वायव्य एवं उत्तर के बीच बनाया जाता है। यह कक्ष परिवार के मुखिया एवं बड़े-बुजुर्गों के कमरे से दूर रखा जाता है। ताकि शिष्टाचार एवं मर्यादा का पालन हो सके और नव दम्पत्ति के लिए भी संकोचमुक्त, वातावरण मिल सके।

आज के सन्दर्भ में भवननिर्माण की समीक्षा-

वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों में तत्कालीन समाज के कुलीन एवं अभिजात्य वर्ग को ध्यान में रखकर भवन में कक्ष निर्माण का प्रतिपादन किया गया है। प्राचीनकाल और आधुनिक काल में केवल समय का ही अन्तर नहीं है, अपितु इस बीच में परिस्थितियों में, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों में, जीवन दर्शन में और पारिवारिक व्यवस्थाओं में पर्याप्त अन्तर आ चुका है, जो इस प्रकार है:-

१. प्राचीनकाल में जनसंख्या कम थी, जो आज 100 करोड़ का आंकड़ा पार कर विकराल रूप धारण कर चुकी है।

२. उस समय जनसंख्या का फैलाव गाँव, देहात, कस्बा एवं नगर में समान रूप में था, जब कि आज जनसंख्या का घनत्व कस्बों, नगर एवं महानगरों की ओर केन्द्रित होता जा रहा है।

३. प्राचीन समय में संयुक्त परिवार की व्यवस्था होने के कारण एक ही घर में २५-५० लोग साथ-साथ रहते थे। जबकि आज इस व्यवस्था के विघटन के कारण परिवार पति, पत्नी एवं बच्चों तक सीमित हो गया है।

४. पुराने जमाने में - "उत्तम खेती, मध्यम बान। अधम चाकरी" का

जीवन-दर्शन था। जबकि आज के समाज में नौकरी एवं व्यापार लोगों की पहली पसन्द एवं खेती अन्तिम पसन्द है।

५. प्राचीन काल में भवन निर्माण की तकनीक के विकसित न होने के कारण ज्यादातर कच्चे मकान और ईंट, पत्थर, कड़ी से निर्मित पक्के मकान बनते थे। ज्यादातर मकान एक या दो मंजिल के होते थे। यहाँ तक कि राजा महाराजाओं के राजमहल भी अधिकतम पांच मंजिल के बने हुए मिलते हैं। आज भवन निर्माण की तकनीक में विकास के कारण कच्चे मकानों का बनना गॉव-देहात में भी समाप्त प्रायः है। आज नगरों में बहुमंजिले फलैटों का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है।

६. उस समय बिजली, वाटर सप्लाई, गटर लाइन, लिफ्ट, कूलर, एयरकण्डीशनर, फ्रिज आदि घरेलू उपकरणें की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। जब कि आज ये हमारे आवास के आवश्यक अंग बन चुके हैं।

७. पुराने समय में खेती एवं बगीचों की उपज, गाय, भैंस, हाथी एवं घोड़ा आदि उसकी हैसियत के परिचाय होते थे। जबकि आज नौकरी में पद, व्यापार का टर्नोवर एवं नई-नई देशी/विदेशी कार से व्यक्ति की हैसियत का पूर्वानुमान होता है।

८. पुराने जमाने में वस्तुओं का लेन-देन अनाज के विनिमय से और मध्यकाल में मुद्रा के विनिमय से होता था। अतः इनके घर में सुरक्षित रखने की व्यवस्था आवश्यक थी। आज के लेन-देन नगदी के साथ-साथ चैक एवं क्रेडिट कार्ड से हो रहा है और आने वाले समय में यह कम्पयूटर/इन्टरनेट के माध्यम से विधुततरंगों के रूप में होगा।

इन सब और इसी प्रकार के अन्य परिवर्तनों ने आज के समाज की जीवनशैली, जीवन दर्शन, सामाजिक, व्यावसायिक एवं आर्थिक मूल्यों तथा प्राथमिकताओं में व्यापक एवं पर्याप्त अन्तर कर दिया है।

आज वास्तु ग्रन्थों के अनुसार १६ कक्षों का निर्माण न तो आवश्यक है और नहीं इसकी उपयोगिता है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखने वाली बात है, कि कोई भी शास्त्र किसी भी आग्रह से बँधा नहीं होता। उसमें देश काल एवं परिस्थितियों के साथ परिवर्तन का लचीलापन सदैव रहता है। यदि ऐसा न होता , तो शास्त्र में एक ही ग्रन्थ होता। विभिन्न आचार्यों के अनेक ग्रन्थों में नये-नये नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन और पूर्वोक्त नियमों का खण्डन-मण्डन इस बात के साक्ष्य हैं, कि शास्त्र परिवर्तनशीलता को स्वीकार करता है और वह परिवर्तित परिस्थितियों के साथ स्वयं को जोड़े रखता है।

किसी भी शास्त्र की आत्मा उसकी मूलसंकल्पना में बसती है, जो उसके सिद्धांतों एवं नियमों में परिलक्षित/प्रतिबिम्बित होती है। इन नियमों एवं सिद्धांतों में समय एवं परिस्थितियों के साथ परिवर्तन होता रहता है। किन्तु मूल संकल्पना ज्यों की त्यों रहती है।

वास्तुग्रन्थों में प्रतिपादित भवन में कक्षों का निर्माण एक निर्देशन मात्र है, जो उस दिशा के स्वभाव एवं गुण-धर्म के अनुसार उसकी प्रकृति के समान गतिविधि को सशक्त बनाने और व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए उपयुक्त स्थल को बतलाता है। वास्तुशास्त्र में ऐसा कोई आग्रह नहीं है, कि एक दिशा में कोई एक ही कार्य करने के लिए उसका कक्ष बनाना चाहिए और अन्य कार्य के लिए नहीं। वस्तुतः यह हर दिशा की प्रकृति एवं उसके गुणधर्मों का अधिकतम उपयोग करने के लिए उस दिशा में समान प्रकृति के

क्रियाकलाप/गतिविधियों को संचालित करने का निर्देश देकर उसका अधिकतम उपयोग करने का मार्गदर्शन करता है।

इसलिए किस-किस दिशा में उसकी प्रकृति एवं गुण-धर्मो के आधार पर कौन-कौन सा कार्य करने के लिए क्या बनाया जा सकता है ? यह जान लेना अति आवश्यक है।

दिशा	*क्या क्या बनायें*
१. ईशान कोण	१. पूजाघर २. कुंआ, बोरिंग, वाटर टैंक ३. द्वार ४. बराण्डा ५. लिविंग रूम ६. ड्राइंग रूम ७. पोर्टिको ८. लान (घास का मैदान) एवं ९. तलघर
२. ईशान एवं पूर्व के बीच में	१. कुआं, बोरिंग, पम्प २. सैप्टिक टैंक ३. द्वार ४. गोबर गैस प्लांट ५. पूजाघर ६. सूतिका गृह ७. सामान्य कक्ष ८. स्टोर ९. बेसमेन्ट एवं १०. तुलसी, पौधे, लान आदि।
३. पूर्व	१. स्नानागार २. सैप्टिक टैंक ३. गोबर गैस ४. स्टोर ५. पूजाघर ६.शौचालय ७. द्वार ८. अतिथिकक्ष ९. बालकनी १०. लान, तुलसी एवं पौधे आदि।

४. पूर्व एवं आग्नेय के बीच में	१. मन्थनगृह २. रसोईघर ३. सीढ़ियां ४. शौचालय ५. स्नानागार ६. अतिथिकक्ष ७. बाइलर ८. जनरेटर/इन्वर्टर ९. मेन स्विच बोर्ड।
५. आग्नेय	१. रसोइघर २. द्वार ३. आफिस ४. लिविंग रूम ५. ड्राइंगरूम ६. पोर्टिको ७. अतिथिकक्ष ८. शौचालय ९. बेसमेन्ट १०. खुला लान
६. आग्नेय एवं दक्षिण के बीच में	१. घी-तेल का भण्डार २. सामान्य स्टोर ३. द्वार ४. शयन कक्ष ५. डाइनिंग रूम ६. ड्राइंग रूम ७. सीड़िया ८. शौचालय ९. पेइंग गेस्टरूम
७. दक्षिण	१. शयनकक्ष २. भण्डार ३. सीड़ियाँ ४. ओवर हैड टैंक ५. ऊँचे पेड़
८. दक्षिण एवं नैऋत्य के बीच में	१. शौचालय २. गोदाम ३. आफिस ४. शयन कक्ष ५. पानी की टंकी, अतिथि कक्ष एवं ६. ऊँचे पेड़।
९. नैऋत्य	१. शस्त्रागार २. भारी एवं कम उपयोगी सामान का स्टोर ३. कच्चे माल का भंडार ४. शयन कक्ष

	५. ऑफिस ६. मशीन रूम ७. सीड़ियां ८. ओवर हैड टैंक ९. ऊँचे पेड़।
१०. नैऋत्य एवं पश्चिम के बीच में	१. अध्ययनकक्ष २. शयनकक्ष ३. स्टोर ४. सीड़ियाँ ५. शौचालय एवं ६. पेड़
११. पश्चिम	१. भोजनकक्ष २. पानी की टंकी ३. सैप्टिक टैंक ४. ओवर हैड़ टैंक ५. शौचालय ६. सीड़ियाँ ७. पेड़ एवं द्वार।
१२. पश्चिम एवं वायव्य के बीच में	१. रोदन गृह २. दण्ड गृह ३. द्वार ४. डाइनिंग रूम ५. ड्राइंगरूम ६.लिविंग रूम ७. शयन कक्ष ८. स्टोर ९. पोर्टिको १०. रसोई घर ११. तल पर पानी की टंकी एवं १२. पेड़
१३. वायव्य	१. पशुशाला २. खाद्यान्न का भण्डार ३. रसोई घर ४. लिविंग रूम ५. सीढ़ियाँ ६. शौचालय ७. पेड़-पौधे।
१४. वायव्य एवं उत्तर के बीच में	१. रति गृह २. बच्चों का कमरा ३. लिविंग रूम ४. भोजन कक्ष ५. अध्ययन कक्ष ६. सैप्टिक टैंक ७. गौबर गैस, ८. पानी का हौज

१५ उत्तर	१. कोषागार २. भण्डार ३. स्वागत कक्ष ४. पानी की टंकी ५. द्वार ६. सैप्टिक टैंक ७. कुआँ ८. लिविंग रूम ९. ड्राइंग रूम १० बेसमेन्ट १० पूजाघर ११. लान एवं पौधे।
१६ उत्तर एवं ईशान के बीच में	१. औषधि कक्ष २. कन्याओं का शयनकक्ष ३. द्वार ४. कुआँ/बोरिंग ५. पूजाघर ६. लिविंग रूम ७. ड्राईंग रूम ८. बेसमेन्ट ९ पोर्टिको

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में उनकी प्रकृति एवं गुण-धर्मो के अनुसार विभिन्न घरेलू गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने के लिए विविध प्रकार का निर्माण करना वास्तुशास्त्र सम्मत है। इस शास्त्र का मुख उद्देश्य है मानव समाज का प्रकृति के साथ सामाजास्य स्थापित कर उसके जीवन की गतिविधियों के लिए प्राकृतिक शक्तियों का समुचित प्रबन्ध कर मानव मात्र को पर्याप्त सुविधा एवं सुरक्षा के साथ व प्रगति और विकास के लक्ष्य पर ले जाना।

भवन निर्माण में लकड़ी

भवन निर्माण में चौखट, दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदान, आलमारी एवं फर्नीचर आदि लकड़ी से बनाये जाते हैं। इनके लिए श्रीपर्णी (कायफल), कुटकी (रोहिणी) शाल एवं सागवान की लकड़ी प्रशस्त होती है। ताल, अर्जुन, शीशम, अशोक एवं महुआ की लकड़ी भी प्रयोग की जा सकती है। अच्छी एवं गुणवान लकड़ी का घर में प्रयोग करना चाहिए। [७३]

७३. बृहद् वास्तुमाला श्लो० १३०-३२

वराह मिहिर के अनुसार श्मशान, सड़क एवं देवमन्दिर की लकड़ी, दीपक लगी लकड़ी तपस्वियों के आश्रम, संगम, घड़े से सीचे वृक्ष, जंगली लताओं के लिपटे वृक्ष, बिजली एवं आँधी से गिरे वृक्ष, सूखे एवं जले वृक्ष तथा मधु-मक्खी के छत्ते वाले वृक्ष की लकड़ी घर में इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए। (७४)

समरांगण सूत्रधार के अनुसार पुराने मकान की ईंट, पत्थर, लोहा एवं लकड़ी नये मकान में नहीं लगानी चाहिए।(७५)

घर में एक, दो या अधिकतम तीन तरह के वृक्षों की लकड़ी का उपयोग करना चाहिए। अधिक वृक्षों की लकड़ी का नहीं। क्योंकि एक प्रकार के वृक्षों की लकड़ी का उपयोग करने से शल्य जनित दोष दूर होते हैं। दो वृक्षों की लकड़ी का इस्तेमाल मध्यम और तीन तरह की लकड़ी का इस्तेमाल अधम होता है। (७६)

कपाट (किबाड़)

दरवाजे एवं खिड़कियों में अच्छी लकड़ी के कपाट लगाने चाहिए। अपनी माप से छोटे या बड़े किबाड शुभ नहीं होते। इस विषय में आचार्य वराह मिहिर का मत है, कि जो कपाट अपने आप खुल जाते हो, वे पागलपन देते है। जो अपने आप बन्द हो जाते हो वे कुलनाशक होते हैं। अपनी माप

---

७४. बृहत्संहिता-वास्तुविद्याध्याय

७५. इष्टिका लोष्ठपाषाणमृतिकाजीर्णमायसम् ।
तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारू नूत्नं गृहाय वै।।

७६. एक वृक्ष मयाः गेहाः सर्वशल्यनिवारकाः।
द्विजात्या मध्यमा, प्रोक्तास्त्रिजात्या अधमा स्मृताः।।

से बड़े कपाट राजभय, माप से छोटे कपाट चोरी का डर और आधे-अधूरे या नीचे किवाड़ व्यसन दायक होते हैं। [७७]

जहां तक सम्भव हो कपाट दो पल्ले के बनवाने चाहिए। यदि सभी दरवाजों के कपाट दो पल्ले के सम्भव न हो, तो मुख्य द्वार, पूजाघर एवं रसोई घर के किबाड़ दो पल्ले के ही बनवाने चाहिए। कपाट अन्दर की ओर खुलने वाले शुभ होते हैं, बाहर की ओर खुलने वाले नहीं।

द्वार स्थापना एवं कपाट का मुहूर्त

तिथि	नन्दा (१, ६, ११) जया (३, ८, १३) पूर्णा (५, १०, १५)
नक्षत्र	अश्वि.रो.पुन, पुष्य,उत्तरात्रय, ह.,चि.,स्वा. अनु.,रेव.
बार	सोम, बुध एवं शुक्र
लग्न	मिथुन, कन्या, तुला एवं मीन

घर के समीप वृक्ष एवं वाटिका

वृक्ष प्राणीमात्र का मित्र है। केवल बढ़ते हुए प्रदूषण को रोकने में ही नहीं, अपितु जलवायु एवं वातावरण के सन्तुलन में भी वृक्षों का योगदान सर्वोपरि है। वृक्षों से हमें फल, फूल औषधि एवं लकड़ी सब कुछ मिलता है। वृक्षों की जड़, शाखा, पत्ता, छाल, फूल एवं फल आदि सभी चीजें मानव जाति के लिए उपयोगी हैं। अत: घर और उसके आस-पास पेड़-पौधें लगाना मनुष्य का धर्म है।

---

७७. उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाश।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च।।

बृहद् वास्तुमाला में कहा गया है कि जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली, तीन कैथ, तीन बेल, तीन आँवला और पाँच आम के वृक्ष लगाता है। वह नरक के दर्शन नहीं करता। [७८]

घर के आँगन, ईशान, पूर्व या उत्तर में तुलसी लगानी चाहिए। घर के पूर्व, पश्चिम, उत्तर या ईशान में लान (घास का मैदान) एवं फूलों के पौधे लगाने चाहिए। घर के आस पास में नीम, अनार, अशोक, नारियल, सुपाड़ी के पेड़ और घर के भीतर तुलसी, गुलाब, चन्दन, मोगरा चमेली, विल्व एवं अंगूर के पौधे शुभ होते है।

मकान से कुछ दूरी पर ईशान में आँवला, नैऋत्य में इमली, आग्नेय में अनार, वायव्य में विल्व वृक्ष उत्तर में कैथ व पाकर पूर्व में बरगद, दक्षिण में गुलाब एवं पश्चिम में पीपल लगाना चाहिए। [७९]

घर में और घर की चहार दिवारी के समीप दूधवाले वृक्ष लगाने से धननाश, कांटेदार वृक्ष लगाने से शत्रुभय और फलवाले वृक्ष लगाने से सन्तान एवं बच्चों को कष्ट मिलता है। [८०]

---

७८. अश्वत्थमेकं पिचुमन्देकं न्यग्रोधमेंकं दशाचिण्चणीकम्।
कपित्थविल्वामलकत्रयञ्च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत्।।

७९. बृहद्वास्तुमाला श्लो० २५-२६ पृ० २१६

८०. तत्रैव श्लो० १३ पृ० ११४

अध्याय चतुर्थ

143 - 163

- बहुमंजिले भवन
- वर्गीकरण
- बहुमंजिले आवासीय फ्लैट
- व्यापारकेन्द्र, दुकान एवं शोरूम
- दुकान एवं शोरूम की आन्तरिक व्यवस्था
- कार्यालय की आन्तरिक व्यवस्था
- होटल एवं रैस्टोरेन्ट
- अस्पताल एवं नर्सिंग होम
- मन्दिर एवं धर्म स्थल
- देवताओं की भूमि
- मन्दिर के लिए चतुषष्ठिपद वास्तु
- औद्योगिक संस्थान

अध्याय चतुर्थ

बहुमंजिले भवन

मन्दिरों के अलावा बहुमंजिले भवनों के निर्माण की चर्चा वास्तुशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलती। क्योंकि उस समय भवन निर्माण की तकनीक इतनी विकसित नहीं थी। जनसंख्या का घनत्व नगरों/महानगरों में केन्द्रित न होकर गाँव, देहात, कस्बा एवं नगरों में समान रूप से विकेन्द्रित था। बिजली, वाटर सप्लाई, गटर लाइन एवं लिफ्ट जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं थी। अतः उन दिनों राजा-महाराजाओं के महल एवं सेठ-साहूकारों की हवेलियां भी दो, तीन या चार मंजिल की ही बनती थी। हमारे देश के पुराने महलों में अधिकतम पांच मंजिल तक का ही निर्माण मिलता है। किन्तु आज अमेरिका में ८८ मंजिल तक और भारत में ३० मंजिल से ऊंचे भवन बन चुके है।

बहुमंजिले भवन बनने के पीछे मुख्य कारण नगरों/महानगरों में भूमि की कमी और जनसंख्या के बढ़ते घनत्व का दबाब हैं, जिसके कारण आवासीय एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुमंजिले भवन के निर्माण के अलावा कोई चारा नहीं है।

जैसा कि पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है, कि वास्तुशास्त्र भवन निर्माण का दिग्दर्शन कराता है। जिस समय में जितनी मंजिल के भवनों का निर्माण प्रचलन में था, उस काल के ग्रन्थों में उस प्रकार के उदाहरणों के माध्यम से वास्तु के नियमों का उपयोग करने का वर्णन और विवेचन किया गया है।

यह सत्य है कि बहुमंजिले भवनों का प्रचलन जैसा आज के समय में है,

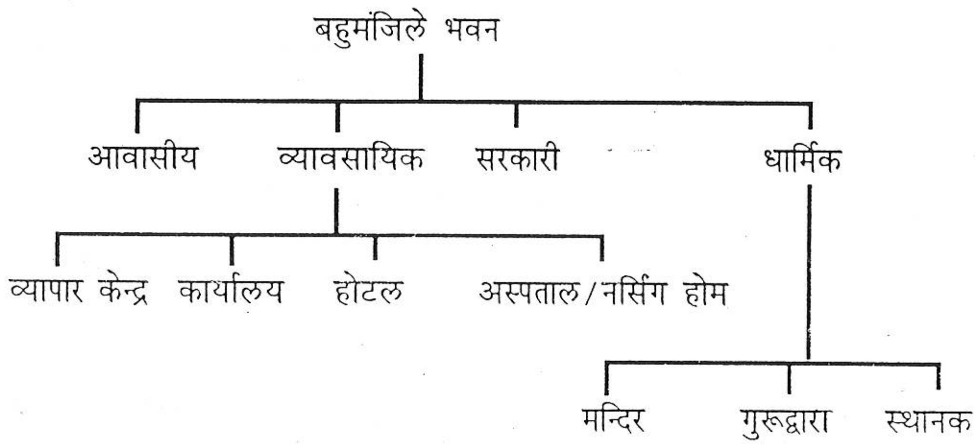
वैसा पुराने समय में नहीं था। किंतु वास्तुशास्त्र की मूल-संकल्पना एवं आधारभूत सिद्धांत प्राचीनकाल और आज के समय में ज्यों के त्यों एक समान हैं। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि आज हम इस शास्त्र की मूल संकल्पना एवं आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर बहुमंजिले भवनों में प्राकृतिक शाक्ति के अधिकतम उपयोग के उदाहरणों का सकारण विचार कर एक तार्किक तथा तथ्यपूर्ण निर्णय पर पहुॅचने का प्रयास करें।

इस विषय में अधिक विस्तार में न जाकर केवल एक बात कहने और समझने की यह हैं कि भूमि का परीक्षण एवं भवन निर्माण के लिए जो नियम एक मंजिला भवन के लिए बतलाये गये हैं, उनका ही प्रयोग एवं उपयोग बहुमंजिले भवनों के लिए किया जा सकता है। इस प्रयोग में केवल एक बात ध्यान रखने योग्य यह है कि भवन निर्माण की तकनीक एवं आवासीय सुविधाओं में पिछले वर्षों में जो-जो प्रगति हुई है - उनको इस प्रयोग में नहीं भुलाना चाहिए।

वर्गीकरण

सामान्यतया बहुमंजिले भवन चार प्रकार के होते हैं - १. आवासीय २. व्यवसायिक ३. सरकारी ४. धर्म स्थल/मन्दिर। व्यावसायिक भवन के अनेक भेद होते है, जिनमें व्यापारिक, कार्यालयीय एवं होटल आदि प्रमुख है। यद्यपि आजकल, लघुउद्योगों का कार्य-विशेषरूप से रेडीमेड गारमेन्टस्, खिलोने, इलेक्ट्रोनिक्स एवं कम्पयूटर साफ्टवेयर आदि के लिए फ्लैटैड फैक्टरी तथा टैक्नोप्लाजा बनने लगी है। किन्तु अभी हमारे देश में इनका व्यापक रूप में प्रचलन नहीं है। बहुमंजिले भवनों में लघु उद्योगों और प्रदूषण रहित उद्योगों की अभी महानगरों में शुरूआत हुई है। फिर भी आने वाले समय में इनके प्रचलन के बढ़ने की सम्भावना है।

मन्दिर तो प्राचीन काल में भी १२ और २० भूमिकाओं वाले बनते थे। किन्तु उनका उपयोग आज के बहुमंजिले भवनों के रूप में नहीं होता था। उनकी ऊंचाई ६४ हाथ अर्थात ९६ फुट तक होती थी। आज बहुमंजिल की मूल संकल्पना से मिलते-जुलते मन्दिर बनने लगे है, जिनमें हरिद्वार का भारत माता मन्दिर और वृन्दावन का पागलबावा का मन्दिर इसके उदाहरण माने जा सकते है। मन्दिरों की तरह ही गुरूद्वारे एवं जैन स्थानक भी अब बहुमंजिले बन रहे हैं।



२१वीं शताब्दी भवन निर्माण की दृष्टि से हमारे देश में बहुमंजिले भवन के निर्माण की शताब्दी होगी। आज जिन-जिन गतिविधियों के लिए बहूमंजिले भवनों की कल्पना तक नहीं की जा सकती, उन कार्यों के लिए कल बहूमंजिले भवन बन सकते हैं। देश में रेलवे स्टेशन, बस अड्डे तथा हवाई अड्डों पर बहुमंजिली संस्कृति का प्रभाव पड़ चुका है। और आने-वाले समय में इसका प्रभाव-क्षेत्र और व्यापक होगा। इसलिए इस विषय में अभी से चिन्तन एवं विचार-मन्थन कर शुभाशुभत्व के सूत्रों को निर्धारित करने की आवश्यकता है।

बहुमंजिले आवासीय फ्लैट

वास्तु की दृष्टि से बहुमंजिले आवासीय फ्लैटस् के बारे विचार बहुधा उन्हीं नियमों के आधार पर किया जाना चाहिए, जो एक मंजिला भवन के बारे में वास्तुग्रन्थों में बतलाये गये है। फ्लैट्स के बारे में केवल इतना ध्यान रखना आवश्यक है, कि यह एक छोटी आवासीय इकाई है, जिसमें एक से पांच तक कमरे और साथ में रसोई घर, शौचालय, स्नानघर, कहीं छोटा सा स्टोर या दुछन्ती तथा बराण्डा होता है। स्थान की कमी और कमरों की संख्या सीमित होने के कारण इन्हीं कमरों का बहुविध उपयोग करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए निम्न या मध्यम आयवर्ग के फ्लैटों को लिया जा सकता है, जिनकी संख्या सर्वाधिक होती है। आज बम्बई के उपनगरों में एक या दो कमरों के ही फ्लैट बन रहे हैं। अन्य नगरों में जनता श्रेणी के छोटे फ्लैट बने हुए है। इन फ्लैटों में सीमिति स्थान या सीमित कमरे है। अतः इनके लिए वास्तु का विचार करते समय हमारे पास दो ही विकल्प हैं। पहिला कि इन फ्लैटों के बारे में वास्तुशास्त्र के अनुसार विचार ही नहीं किया जाय और दूसरा यह कि वास्तुशास्त्र की मूल संकल्पना के अनुसार इन छोटे फ्लैटों के बारे में प्राकृतिक शक्तियों के उचित प्रबन्धन की दृष्टि से वास्तुशास्त्र के यथा सम्भव नियमों का उपयोग करने का प्रयत्न किया जाय। इन विकल्पों में दूसरा शास्त्रसम्मत हैं क्योंकि शास्त्र कभी किसी आग्रह से नहीं बंधता। और वह अपने स्वभाव के अनुसार देश, काल एवं परिस्थितियों से सामञ्जस्य स्थापित करने में स्वयं पहल करना है। अपने इसी लचीले एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण शास्त्रीय नियमों में देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार संशोधन और परिवर्तन होते रहते हैं।

१. बहुमंजिले फ्लैट, चाहे वे आवासीय हों, व्यवसायिक हों या सरकारी-इन के निर्माण में निम्न-लिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

२. बहुमंजिले भवनों के निर्माण में उन सभी नियमों का यथासंभव पालन करना चाहिए, जो एक मंजिल के भवन के लिए बतलाये गये हैं।

३. जिस भूमि/भूखण्ड पर बहुमंजिले भवन बनाने हैं, उसका चौकोर (आयताकार/वर्गाकार) या अन्य शुभ आकार वाला होना आवश्यक है।

४. भूखण्ड की जमीन के घनत्व की परीक्षा कर लेनी चाहिए और यदि शल्य दोष हो तो उसका निवारण कर लेना चाहिए।

५. भूखण्ड के समीपवर्ती मार्ग और मन्दिर, वृक्ष एवं मार्गविध का विचार करना चाहिए।

६. भूमि का ढलान पूर्व एवं उत्तर में होना चाहिए। पश्चिम एवं दक्षिण में भूमि ऊंची होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो मिट्टी का भराव कर ढलान सही कर लेना चाहिए। जलस्रोत (वाटर सप्लाई लाइन, बोरिंग, भूमिगत टैंक एवं बूस्टर पम्प) पूर्व, उत्तर या ईशान में होने चाहिए।

७. बहुमंजिले भवन में गुरूत्वबल का ध्यान रखना चाहिए। ४-५ मंजिल के बाद फ्लैटों की ऊंचाई और क्षेत्रफल में कमी करना उपयुक्त रहता है। क्योंकि पूरे भवन के गुरूत्वकेन्द्र से गुजरने वाली ऊर्ध्वाधर रेखा का भवन के बीचों-बीच रहना आवश्यक है, जिससे भवन का भार चारों ओर समान हो।

८. खम्बे (कालम) एवं दीवारें ९० अंश का कोण बनाते हुए उठाने चाहिए। इनमें जरा सा भी झुकाव नहीं होना चाहिए।

९. भवन के पूर्व एवं उत्तर में पश्चिम तथा दक्षिण की अपेक्षा अधिक खाली स्थान छोड़ना चाहिए। इस स्थान में लान एवं पौधे लगा सकते हैं या इस स्थान का पार्किंग के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

१०. भवन का प्रवेश द्वार यथा संभव पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए। यह पश्चिम में भी रखा जा सकता है। दक्षिण से बचना श्रेयस्कर है।

११. भवन L एवं C के आकार के बजाय H एवं E के आकार में बनाने चाहिए। और प्रत्येक तल पर दो या चार फ्लैट बनाये जा सकते हैं।

१२. फ्लैटों का डिजायन इस प्रकार बनाया जाय कि इनमें रसोई घर आग्नेय या वायव्य में शयनकक्ष दक्षिण, पश्चिम या उत्तर वायव्य में हो और बालकानी या खुली छत्त पूर्व या उत्तर की ओर हो।

१३. इन फ्लैटों के बिजली के मेन स्विच बोर्ड भूतल पर आग्नेय कोण या उसके आस-पास लगाना उपयुक्त होता है।

१४. आवासीय परिसर में स्वीमिंग पूल पश्चिम में और हैल्थ क्लब या जिमनेजियम पूर्व में बनाना उचित है।

१५. फ्लैटों में शौचालय, स्नानागार एवं पूजा घर यथा संभव निर्दिष्ट-दिशा में बनाने चाहिए और निषिद्ध दिशा से बचने का प्रयास करना चाहिए।

१६. भवन के आस-पास पूर्व एवं उत्तर में घास एवं पौधे लगाना तथा दक्षिण एवं पश्चिम में पेड़ लगाना उचित है।

१८. भवन का मुख्य द्वार पूर्व में हो तो फुहारे एवं वाटर फाल (झरना) द्वार के दाहिनी ओर और मुख्यद्वार उत्तर में हो तो बायीं ओर लगाने चाहिए।

१८. जल एवं मल का निकास पूर्व, उत्तर एवं ईशान को छोड़कर अन्य दिशाओं में किया जा सकता है।

१९. फ्लैटों में ड्राइंग रूम या लिविंग रूम उत्तर या पश्चिम में बनाना उचित है। आवश्यक होने पर यह ईशान एवं पूर्व के बीच में भी बनाया जा सकता है।

२० कुंआ, बोरिंग एवं भूमिगत टैंक आग्नेय, वायव्य एवं नैऋत्य कोण में नहीं बनाना चाहिए।

व्यापार केन्द्र

व्यापारकेन्द्र एक-दो मंजिले एवं बहुमंजिले दोनों प्रकार के होते हैं। लोकल शापिंग काम्पलैक्स प्रायः दो या तीन मंजिल के होते है। इनमें भूमितल और प्रथम तल पर दूकान तथा शोरूम और ऊपर की मंजिल पर कार्यालय होते हैं। जब कि कामर्शियल कॉम्पलेक्स में लोअर एवं अपर ग्राउण्ड फलोर पर शोरूम और ऊपर की मंजिलों पर कार्यालय होते हैं। कहीं-कहीं बेसमेन्ट का भी शोरूम के रूप में इस्तेमाल होता है।

व्यावसायिक भवन में दूकान, शोरूम या कार्यालय बनाये जायें, ये एक मंजिला, दो मंजिला या बहुमंजिला हो, तो भी इनमें वास्तु का विचार लगभग एक समान होता है। इनके निर्माण में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए -

१. व्यावसायिक भवन चाहे मिनि मार्केट, लोकल शापिंग सेन्टर, कामर्शियल काम्पलेक्स, डिस्ट्रक सैन्टर या मण्डी के रूप में बनाये जाय, ये एक मंजिला, दो मंजिला या बहुमंजिले हो - इन में भूखण्ड का चयन, भूमि

परीक्षण भूमि का ढ़ाल एवं वेध आदि का विचार पूर्वोक्त नियमों के अनुसार करना चाहिए।

२. इनके लिए भूखण्ड चौकोर या सिंहमुखी उत्तम होता है।

३. व्यावसायिक भवन के लिए वह भूखण्ड जिसके पूर्व, उत्तर या पश्चिम में सड़क हो अथवा जिसके दोनों ओर सड़क हो वह उपयुक्त होता है।

४. यदि भूखण्ड के पश्चिम एवं दक्षिण में सड़क हो, तो भवन का डिजाइन इस प्रकार बनाया जाय, कि अधिकतम दूकान, शोरूम एवं कार्यालयों के द्वार पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख रहें।

५. भूखण्ड पर दूकान एवं शोरूम उसके पश्चिमी एवं दक्षिणी भाग पर इस प्रकार बनायी जाय, कि पूर्वीभाग में पश्चिमी भाग की अपेक्षा और उत्तरी भाग में दक्षिणी भाग की अपेक्षा अधिक खुला स्थान रहे।

६. भूखण्ड के ईशान में कोई निर्माण नहीं करना चाहिए। वहाँ चाहें तो छोटा-सा मन्दिर नलकूप. भूमिगत टैंक, झरना या फुहारें बना सकते हैं।

७. इन भवनों के मेन स्विचबोर्ड एवं जनरेटर अग्निकोण या उसके आस-पास के क्षेत्र में लगाने चाहिए।

८. सार्वजनिक सुविधाऐं (टायलेट) भूखण्ड के दक्षिण या पश्चिम के हिस्से में बनाना उपयुक्त होता है।

९. भवन की ऊपरी मंजिलों की बालकानी एवं टैरेस यथासम्भव पूर्व या उत्तर की ओर बनानी चाहिए।

१०. इन परिसरों में बड़े वाहन एवं कारों के लिए पार्किंग दक्षिण या पश्चिम में तथा स्कूटर आदि दोपहिया वाहनों की पार्किंग उत्तर या पूर्व में बनानी चाहिए।

११. भवन निर्माण में पहिले बतलाये गये नियमों का यथासंभव पालन करना चाहिए।

दूकान एवं शोरूम की आन्तरिक व्यवस्था

दूकान या शोरूम के बारे में वास्तुशास्त्र की दृष्टि से उसकी आन्तरिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

१. दूकान या शोरूम का मुख पूर्व एवं उत्तर की ओर होना व्यापारिक दृष्टि से अधिक लाभदायक होता है। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो पश्चिमाभिमुख रखना चाहिए। दक्षिण को मुख निषिध्द है।

२. इसके अन्दर के रैक, सैल्फ, अलमारियॉ, शोकेस एवं काउन्टर आदि, जिनमें बिक्री का सामान रखना हो, वे सब इसके दक्षिण एवं पश्चिम भाग में बनाना उचित होता है। बिक्री का सामान दक्षिण, पश्चिम एवं वायव्य में रखना शास्त्रसम्मत है। ईशान, आग्नेय एवं बीच का भाग खाली रखना चाहिए।

३. ईशान कोण का हिस्सा खाली रखना चाहिए। इस भाग में मन्दिर या इष्टदेव का चित्र अथवा पीने का पानी रख सकते हैं।

४. आग्नेय कोण में बिजली का मेन बोर्ड, इन्वर्टर, या जनरेटर रखना उचित है।

५. दूकान के बिक्री के काउन्टर पर खड़े सेल्समैन या सैल्सगर्ल का मुंह पूर्व

या उत्तर की ओर तथा ग्राहक का मुँह पश्चिम या दक्षिण की ओर होना उचित है।

६. दूकान या शोरूम के मालिक या मैनेजर को नैत्रृत्य कोण या पश्चिम में बैठना चाहिए।

७. तिजोरी (कैशबाक्स) पश्चिम या दक्षिण दीवार के सहारे रखना उचित है।

८. अगर अलग से कैश काउन्टर बनाना हो तो पश्चिमी भाग सबसे उपयुक्त रहता है।

९. कैश काउन्टर, मालिक या मैनेजर के स्थान के ऊपर कोई बीम नहीं होना चाहिए।

कार्यालय की आन्तरिक व्यवस्था

व्यावसायिक, औद्योगिक संगठन एवं विविध परामर्शदाताओं के कार्यालय की व्यवस्था के लिए वास्तुशास्त्र के महत्वपूर्ण सूत्र इस प्रकार है -

१. कार्यालय का प्रवेश द्वार यथासंभव पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए।

२. कार्यालय में स्वागत काउण्टर अन्दर आते समय बायीं ओर तथा प्रतीक्षा स्थल दाहिनी ओर होना उचित है।

३. यदि प्रतीक्षा स्थल बनाना सम्भव न हो, तो मालिक एवं अधिकारियों के केबिन के बाहर आगत्तुकों के लिए कुर्सियाँ या सौफासेट पूर्व अथवा उत्तर की दीवार के सहारे रखने चाहिए। ताकि आगन्तुको का मुँह पश्चिम या दक्षिण की ओर रहे।

४. मालिक, डाइरेक्टर, मैनेजर या सर्वोच्च व्यक्ति का केबिन/कक्ष दक्षिणी या पश्चिमी भाग में बनाना उचित है। इसमें कार्यालय के प्रमुख की कुर्सी इस प्रकार लगानी चाहिए कि उसका मुँह पूर्व या उत्तर की ओर तथा आगन्तुकों का मुँह पश्चिम या दक्षिण की ओर रहे।

५. कार्यालय में प्रैन्ट्री बनानी हो, तो आग्नेय में बनानी चाहिए।

६. ऑफिस के भीतर टायलेट नैऋत्य में बनानी चाहिए। यदि सम्भव न हो, तो ईशान एवं वायव्य को छोड़कर अन्य दिशा में बनाना चाहिए।

७. कार्यालय में अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिकारियों के केबिन के पास पश्चिम और दक्षिण में पद के क्रम के अनुसार बैठाना चाहिए।

८. कार्यालय में खजांची (कैशियर), एकाउन्टेन्ट और लेखा विभाग के अन्य कर्मचारियों को उत्तर की ओर तथा बाहर का काम करने वाले, एजेन्ट, सेल्समैन, निरीक्षक एवं पत्र/सन्देश वाहकों को वायव्य में बैठाना चाहिए।

९. कार्यालय का द्वार किसी अन्य कार्यालय के द्वार के सामने, केन्टीन या सार्वजनिक टेलीफोनबूथ के पास होना शुभ नहीं होता।

होटल एवं रैस्टोरेन्ट

आवागमन के साधनों में विकास, व्यावसायिक गतिविधियों का विस्तार, आमोद-प्रमोद के प्रति अभिरूचि और पर्यटन एवं अन्य प्रकार की यात्राओं में वृद्धि के कारण आज होटल एवं रैस्टोरेन्ट का व्यवसाय फल-फूल रहा है।

होटल एवं जलपानगृह का उपयोग मुख्यरूप से अल्पकालीन निवास, भोजन एवं जलपान के लिए ही नहीं होता। अपितु बिजनेस कान्फ्रेन्स,

गोष्ठियों, मीटिंग, सम्मेलन, मिलना-जुलना, शादी, सगाई एवं पार्टियों के लिए किया जाता है। आज होटलों व अनेक प्रकार की सरकारी, व्यावसायिक सामाजिक एवं आमोद-प्रमोद की गतिविधियों के केन्द्र बन गये हैं।

इस व्यवसाय में मुख्यकार्य, आने वाले ग्राहकों को भोजन एवं आवास के साथ उनके सुख-सुविधा की स्तरीय व्यवस्था करना है। जिससे ग्राहक सन्तुष्ट हो सके। वस्तुतः यह एक ग्लैमरस व्यवसाय है। अतः होटल एवं जलपानगृह का निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुरूप करना चाहिए। ताकि यहाँ आने वाले ग्राहकों सन्तुष्टि और होटल/रैस्टोरेन्ट को ख्याति, लोकप्रियता तथा अच्छा व्यापार मिल सके।

होटल एवं जलपान गृह एक मंजिला या बहुमंजिला कैसा भी हों, उसके निर्माण में महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं -

१. होटल या रेस्टोरेन्ट के लिए भूखण्ड का चयन व्यावसायिक भवन के लिए बतलाये गये सिद्धांतों के अनुरूप करना चाहिए।

२. भूखण्ड की आकृति वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार एवं सिंहमुखी श्रेष्ठ होती है।

३. भूमि का ढाल, वेध, सड़क एवं प्रवेशद्वार व्यावसायिक भवन के समान होता है।

४. पूरे भवन का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि नैऋत्य की ऊंचाई सर्वाधिक और ईशान की ऊंचाई सबसे कम हो।

५. होटल में यात्रियों के निवास के कमरे पश्चिम और दक्षिण की ओर इस प्रकार बनाने चाहिए कि उनके द्वार पूर्व या उत्तर की ओर खुले। यदि

ऐसा सम्भव न हो, तो आग्नेय के निकट द्वार रखे जा सकते हैं।

६. कमरों के अन्दर शौचालय, स्नान घर, पलंग टी.वी. वार्डरोब आदि की व्यवस्था आवासीय भवन के शयन कक्ष के अनुरूप करनी चाहिए।

७. होटल या रेस्टोरेन्ट का किचन आग्नेय में तथा भोजन कक्ष भूमितल पर दक्षिण या पश्चिम में बनाना उचित है।

८. नलकूप एवं भूमिगत टैंक ईशान के पास और तरणताल (स्वीमिंग पूल) पश्चिम, उत्तर या पूर्व में बनाया जा सकता है। ओवर हैड टैंक वायव्य या पश्चिम में बनाना उचित है।

९. स्वागतकक्ष प्रवेशद्वार के समीप दक्षिण या पश्चिम दिशा में इस प्रकार बनाने चाहिए, कि स्वागतकर्ता का मुँह उत्तर या पूर्व की ओर रहे।

१०. रेस्टोरेन्ट में जलपानकक्ष पश्चिम या दक्षिण में रसोईघर आग्नेय या नैऋत्य में और कैश काउन्टर पूर्वाभिमुख या उत्तरामिमुख बनाना चाहिए।

११. होटल में तलघर में जिमनेजियम बनाया जा सकता है। तलघर के दक्षिण-पश्चिम में भण्डार बनाना उचित है।

१२. अन्य सभी बातों का विचार व्यावसायिक एवं आवासीय वास्तु के नियमों से करना चाहिए।

अस्पताल एवं नर्सिंग होम

अस्पताल एवं नर्सिंग होम के लिए भूमि, भूखण्ड, उसका आकार, ढलान, वेध और निर्माण व्यावसायिक भवन निर्माण के नियमों के अनुसार किया जाता है। इस विषय में अन्य महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं -

१. अस्पताल का मध्यभाग (ब्रह्मस्थान) खुला रखना उचित होता है।

२. इसमें गहन चिकित्सा कक्ष (आई.सी.यू.) वायव्य में बनाना चाहिए।

३. अस्पताल में प्रसूतिकक्ष ईशान एवं पूर्व के बीच में और यदि ऐसा संभव न हो तो उत्तर या पूर्व में बनाना चाहिए।

४. इसमें शल्य चिकित्साकक्ष एवं आपरेशन थियेटर पश्चिम में बनाना श्रेष्ठ होता है।

५. अस्पताल में आपातकालीन (इमरजेन्सी वार्ड) वायव्य के समीप या उत्तर अथवा पूर्व में बनाना उचित है।

६. नैऋत्य कोण में कोई भी वार्ड नहीं बनाना चाहिए। इस दिशा में केवल भण्डार, रिसर्चयूनिट या लैबोरेटरी बनायी जा सकती है।

७. रोगियों को देखने के लिए डाक्टरों के कमरे या बाह्य चिकित्सा विभाग (ओ०पी०डी०) पूर्व या उत्तर दिशा में बनाना चाहिए।

८. एक्सरे मशीन, फिजियों थैरेपी एवं विद्युत उपकरण के कक्ष अग्निकोण या उसके आस-पास बनाने चाहिए।

९. रोगियों के कमरे वायव्य दिशा में श्रेष्ठ, दक्षिण में निषिध्द और अन्य दिशाओं में सामान्य होते हैं।

१०. कमरों में रोगियों के पलंग इस प्रकार लगाने चाहिए, कि उनका सिरहाना उत्तर की ओर न रहे।

११. मुर्दाघर या पोस्टमार्टम का कमरा दक्षिण में बनाया जा सकता है।

१२. अस्पताल का द्वार, रिसेप्शन, कैश काउन्टर, पार्किंग, वेटिंग, ओवर हैड

टैंक, शौचालय, पानी की निकासी आदि सभी बातों का विचार व्यावसायिक भवनों के समान किया जाता है।

१३. अस्पताल परिसर में स्टाफ क्वाटर पश्चिमी भाग में बनाना उचित होता है।

मन्दिर एवं धर्मस्थल

वास्तु शास्त्र के प्राचीनग्रन्थों में मन्दिर का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों में मन्दिर निर्माण की तकनीक एवं शिल्प की चर्चा व्यापक स्तर पर मिलती। शिल्पशास्त्र की विषय-सामग्री को यदि मन्दिर एवं अन्य भवन के निर्माण के अनुसार वर्गीकृत किया जाय, तो अस्सी प्रतिशत सामग्री मन्दिर के निर्माण की मिलती है।

मन्दिरों व अन्य धर्मस्थलों का निर्माण समय-समय पर राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में परिवर्तन तथा प्राचीन भारत में विभिन्न संस्कृतियों के उत्थान, पतन एवं संगम से प्रभावित हुआ है। फिर भी वास्तु शास्त्र की दृष्टि से उसके निर्माण के सिद्धांतों में एकरूपता बनी रही है। केवल उसके शिल्प में परिवर्तन दिखलाई देते हैं।

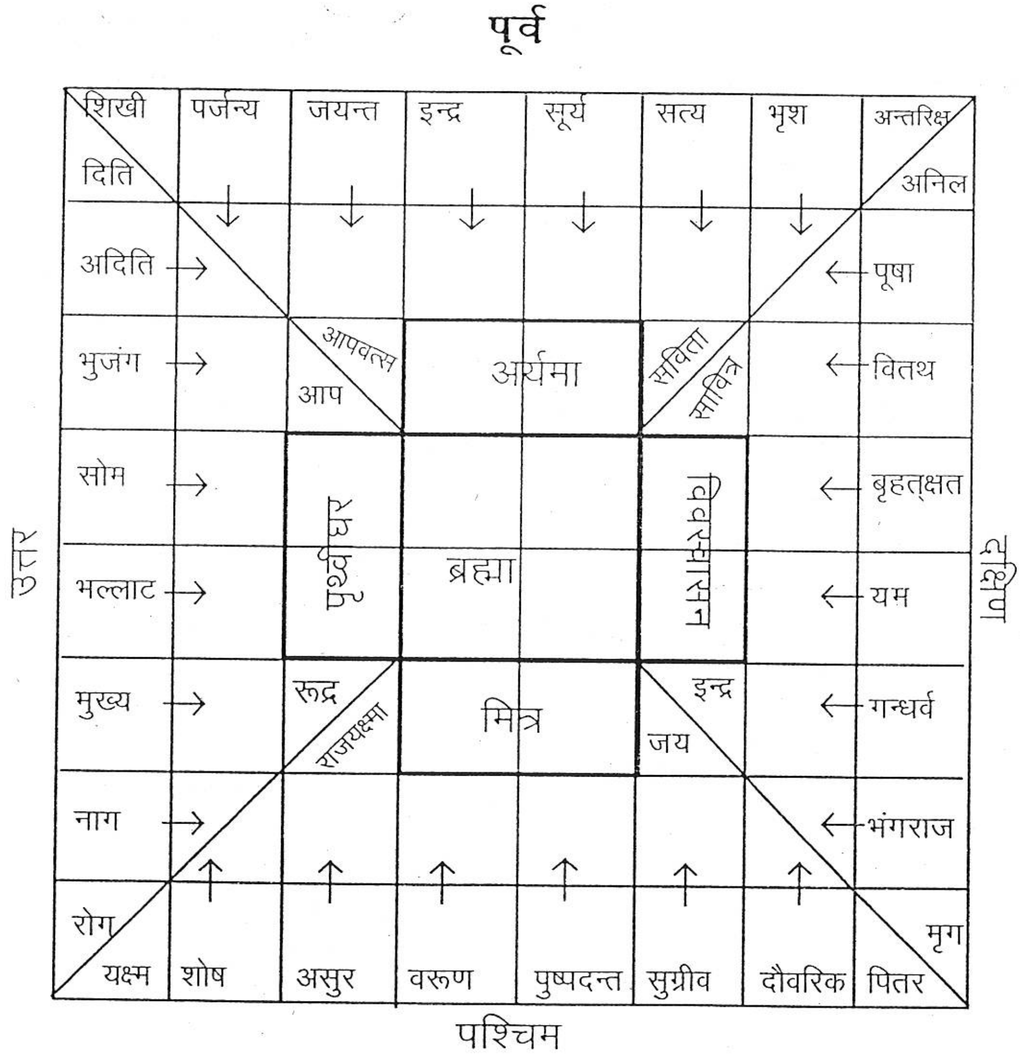
उदाहरार्थ वेदोत्तर कालीन, शक-हूण कालीन, गुप्तकालीन, मुगल कालीन एवं आधुनिक सभी जैन, बौध्द एवं हिन्दू मन्दिरों में द्वार, गर्भगृह, स्तम्भ, वेदी, एवं शिखर का निर्माण समान नियमों पर आधारित है। इतना ही नहीं चाहे मन्दिर के ऊपर का शिखर हो, मस्जिद के गुम्बद हो, गुरूदारों के शिखर हों या गिरजाघर की मीनार हो - इनका निर्माण वास्तु के एक ही सिद्धांत पर आधारित होता है।

देवताओं की भूमि

वास्तुग्रन्थों के अनुसार देवता वनों की सीमाओं, नदियों के पवित्र तटों, पर्वतों, झरनों एवं बाग-बगीचों वाले उत्तमस्थान पर रमण करते हैं। (८१)

इसीलिए देश के प्रसिद्ध एवं वैभवशाली मन्दिर प्रायः पवित्र नदी एवं सरोवर के किनारों पर, पर्वतों पर, सागर के समीप या उद्यानों के आस-पास बने हैं।

मन्दिर के लिए चतुषष्ठिपद वास्तु



८१. बृहद्वास्तुमाला श्लो० ८ पृ० १६२

मन्दिर की रचना का मुख्याधार उक्त चतुस्षष्ठिपद वास्तु है। इसमें चारों दिशाओं में चार द्वार, उत्तर-पूर्वी भाग में वास्तुपुरूष के सिरवाले क्षेत्र में गर्भगृह तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग में वास्तुपुरूष के पैर वाले क्षेत्र में गोपुर या सिंहपौर (मुख्य प्रवेश द्वार) बनाया जाता है।

मन्दिर के लिए ब्राहाणी भूमि प्रशस्त होती है। भूमि का घनत्व एवं शल्यपरीक्षा पूर्वोक्त नियमों से करनी चाहिए। इसके लिए मार्ग एवं वेध का विचार भी सामान्य नियमों से किया जाता है। मन्दिर निर्माण के लिए भूखण्ड का आकार वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार, अष्टभुजाकार या षड्भुजाकार शुभ होता है।

मन्दिर बनाने में सर्वप्रथम गर्भगृह की स्थिति और उसका माप निर्धारित कर लेना चाहिए। गर्भगृह के मान के बराबर दायीं एवं बायीं ओर के कक्ष और गर्भगृह से तीन गुना मुख्य मण्डप बनाया जाता है। गर्भगृह से दूना विस्तार और चार गुनी मन्दिर की ऊंचाई होती है। गर्भगृह के चौथाई मान का द्वार होता है और द्वार की चौड़ाई से उसकी ऊंचाई दूनी होती है। द्वार के मान में से उसका अष्टमांश घटाने से प्रतिमा का मान होता है। [८२]

मन्दिर के विस्तार एवं गर्भगृह के मान के अनुसार बृहत्संहिता एवं अन्य वास्तुग्रन्थों में बीस प्रकार के मन्दिरों का उल्लेख मिलता है यथा - [८३]

१. मेरू, २. मन्दर, ३. कैलाश, ४. विमानच्छद, ५. नन्दन, ६. समुद्र, ७. पद्म, ८. गरूड़, ९. नन्दिवर्धन, १०. कुञ्जर, ११. गुहराज, १२. वृष, १३.

---

८२. तत्रैव श्लो० ११-१६

८३. (।) बृहत्संहिता - प्रासाद लक्षणाध्याय

(।।) बृहद्वास्तुमाला श्लोक १७-१९ पृ० १६५

हंस, १४. सर्वतोभद्र, १५. घट, १६. सिंह, १७. वृत्त, १८. चतुष्कोण, १९. षोडशाश्रि एवं २०. अष्टाश्रि। इन मन्दिरों के निर्माण एवं उनके शिल्प पर शिल्प शास्त्र में दर्जनों ग्रन्थ लिखे गये हैं।

मन्दिर में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्रतिमा किसी भी दिशा में मुख करते हुए स्थापित की जा सकती है। सूर्य, इन्द्र एवं कार्तिकेय की प्रतिमा पूर्व या पश्चिम की ओर मुँह करते हुए और गणेश, कुबेर, भैरव, चामुण्डा एवं देवियों की प्रतिमाएं दक्षिणमुखी स्थापित की जाती हैं। हनुमान जी के प्रतिमा नैऋत्य की ओर देखती हुई तथा जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं पूर्व या पश्चिम को देखते हुए स्थापित की जाती है।

औद्योगिक संस्थान

आज अर्थव्यवस्था में उद्योग रीढ़ की हड्डी है। देश की अर्थव्यवस्था की मजबूती घरेलू उत्पाद पर आधारित है। स्वतन्त्र भारत में नये उद्योगों की स्थापना में तेजी आयी है। और अब लाइसेन्स/परमिट की अनिवार्यता समाप्त हो जाने से देशी एवं विदेशी कम्पनियाँ भारत में अपने पूंजी निवेश को लगातार बढ़ा रही हैं। फिर देश के औद्योगिक क्षेत्रों में रूग्ण इकाईयों की संख्या बढ़ रही है। छोटी-मोटी फैक्टरी से लेकर बड़ी-बड़ी मिल एवं इण्डस्ट्रीज तक में रूण्णता फैल रही है। कहीं आर्थिक, कहीं तकनीकी और कहीं-कहीं श्रमिक यूनियनों की समस्याएँ उद्योगों में घाटे बढ़ा रही है। निजी उद्योगों में संसाधनों की कमी एक महत्वपूर्ण कारण माना जा सकता है। किन्तु सरकारी उद्योगों में संसाधनों की कमी नहीं है। फिर भी सैकड़ों सरकारी उद्योग घाटे में चल रहे हैं और हमारे बजट के घाटे को बढ़ा कर हमारी अर्थ व्यवस्था पर बोझ बनते जा रहे हैं।

उद्योग चाहे छोटे स्तर पर हो या बड़े स्तर पर, यदि इनके फैक्ट्री/कारखानों का निर्माण वास्तु के अनुसार किया जाय, तो अनेक समस्याओं से बचा जा सकता है। जो कारखाने या इण्डस्ट्रीज सफलता पूर्वक नहीं चल रहे हैं, उनमें वास्तु सम्बन्धी दोष हैं। अत: फैक्ट्री, मिल या कारखाना लगते समय वास्तु शास्त्र के अनुसार निर्माण करना चाहिए। इस विषय में विचारणीय महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं -

१. फैक्ट्री या मिल लगाने के लिए भूखण्ड का चयन करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि भूखण्ड और उसके आस-पास कोई श्मशान या कब्रिस्तान न रहा हो। यदि भूमि में शल्यदोष हो तो उसका निराकरण कर लेना चाहिए।

२. भूमि का ढलान, आकार, सड़क एवं वेध का विचार वास्तु के सामान्य नियमों से किया जाता है।

३. भूखण्ड में ईशान के अलावा कहीं विस्तार हो या आग्नेय एवं वायव्य के अलावा कहीं कटान हो, तो उसमें आवश्यक संशोधन कर लेना चाहिए।

४. आस-पास के भूखण्डों का पानी बहकर अपने भूखण्ड पर नहीं आना चाहिए। भूखण्ड से पूर्व, उत्तर एवं ईशान में नदी, झील, तालाब एवं कुआं होना शुभ होता है।

५. प्लाट के पश्चिम, दक्षिण एवं नैऋत्य में ऊंचे टीले, पहाड़ियाँ, चट्टान एवं ऊंचे पेड़ होना शुभ होता है।

६. भूखण्ड के चारों ओर अथवा उत्तर एवं पूर्व की ओर मार्ग होना शुभ

होता है तथा दक्षिण या पश्चिम में मार्ग होना साधारण होता है।

७. कारखाने का मुख्य द्वार पूर्व, उत्तर या ईशान में श्रेष्ठ होता है। आग्नेय, वायव्य एवं नैऋत्य में निषिध्द होता है। वायव्य के क्षेत्र में पश्चिम की ओर और आग्नेय के क्षेत्र में दक्षिण की ओर आवश्यक होने पर द्वार बनाया जा सकता है।

८. कारखाने का मुख्य भवन या वर्कशाप भूखण्ड के दक्षिणी पश्चिमी भाग में इस प्रकार बनायी जाय, कि पूर्व एवं उत्तर की ओर खाली भाग अधिक रहे।

९. भूखण्ड का मध्यभाग (ब्रह्मस्थान) खाली रहना चाहिए।

१०. कारखाने का भवन यदि दो या तीन खण्डों में L या U के आकार में बनाना हो, तो उत्तर या पूर्व को खुला रखना चाहिए।

११. कारखाने में कुंआ, तालाब, नलकूप या भूमिगत टैंक पूर्व या उत्तर में और ओवर हैड टैंक पश्चिम में नैऋत्य या वायव्य की ओर बनाने चाहिए।

१२. कारखाने में मुख्य एवं भारी मशीनों की स्थापना नैऋत्य क्षेत्र में करनी चाहिए।

१३. कारखाने में ऊर्जा के उपकरण, भट्टी (फरनेस) बायलर, जनरेटर एवं ट्रांसफार्मर आदि आग्नेय क्षेत्र में लगाने चाहिए।

१४. मशीनों की मरम्मत के लिए वर्कशाप पश्चिम, पूर्व या आग्नेय क्षेत्र में बनायी जा सकती है।

१५. कारखाने में कच्चे माल का गोदाम नैऋत्य में और तैयार माल का गौदान वायव्य में बनाना शुभ होता है।

१६. असैम्बलिंग या पैकिंग का यूनिट पूर्व या उत्तर में बनाना चाहिए।

१७. अनुसंधान एवं विकास की इकाई भूखण्ड के उत्तर या पूर्व में बनानी चाहिए।

१८. रासायनिक एवं अन्य परीक्षणों के लिए लोबोरेटिरी पश्चिम में लगायी जाती है।

१९. कारखाने या मिल की व्यवस्था के लिए प्रशासकीय खण्ड दक्षिण पश्चिम में बनाना चाहिए। इसकी आन्तरिक व्यवस्था कार्यालय के समान होती है।

२०. कारखाने के कर्मचारियों के आवास पश्चिम उत्तर या दक्षिण में सुविधानुसार बनाये जा सकते हैं।

२१. मन्दिर, पार्किंग. लान एवं वाटिका ईशान कोण में बनाये जाते हैं।

२२. अन्य बातों का विचार वास्तुशास्त्र के सामान्य नियमों से करना चाहिए।

अध्याय पंचम

165 - 190

- वास्तुदोष एवं उनका समाधान
- भूमि दोष एवं उनका समाधान
- भवन में वास्तुदोषों का समाधान
- वास्तु विरूद्ध नक्शे
- वास्तु शास्त्र के पचास सूत्र
- गृह प्रवेश का मुहूर्त
- नूतन गृह प्रवेश
- कलश चक्र
- वामरवि विचार
- द्वार की दिशा और तिथियां
- पृष्ठकी दिशा और तिथियां
- पृष्ठस्थ शुक्र
- जीर्ण गृह प्रवेश
- गृहप्रवेश की विधि

❖ ❖ ❖ ❖

❖

अध्याय पंचम

वास्तु दोष एवं उनका समाधान

वास्तुशास्त्र की मूलसंकल्पना एवं आधारभूत सिद्धांतों का वर्णन एवं विवेचन पिछले चार अध्यायों में किया गया है। जब भी नया भूखण्ड खरीदना हो और उस पर भवन बनाना हो, तो पिछले अध्यायों में बतलाये गये सिद्धांतों एवं नियमों को ध्यान में रखकर भूखण्ड का चयन एवं निर्माण करना चाहिए।

किन्तु वास्तुशास्त्र की समुचित जानकारी न होने के कारण या अनजाने में ऐसे भूखण्ड को खरीद लिया जाय और उस पर ऐसा निर्माण कर दिया जाय, जो वास्तु के अनुरूप नहीं है अथवा बनाबनाया ऐसा भवन खरीद लिया जाय, जो वास्तु के विरूद्ध हो, तो इस स्थिति में वास्तु के अनुरूप सुधार कर लेना चाहिए।

वास्तु दोषों का परिणाम कभी जल्दी और कभी बाद में मिलता है। कभी-कभी यह लम्बे अन्तराल या कलान्तर में अचानक दुर्घटना के रूप में प्रकट होता है। भोपाल गैस काण्ड और हरियाणा के विद्यालय का अग्निकाण्ड जैसी घटनाओं में वास्तुदोष भी एक प्रमुख कारण है। तुगलकाबाद के किले का आबाद न होना और दिल्ली के लालकिले में सफल मुगल बादशाओं का न रहना या वहां रहने वाले बादशाओं को अनेक कष्ट झेलना आदि अनेक घटनाऐं हैं, जो वास्तुदोष कें परिणामों की सत्य कथाएं हैं। आज भी अनेक लोग मकान बनाने के बाद या बना बनाया मकान खरीदने के बाद उसमें कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः भूमि या भवन में किसी प्रकार का वास्तुदोष हो, तो उसका सुधार कर समाधान करलेना श्रेयस्कर है।

भूमि-दोष एवं उनका समाधान

भवन निर्माण के लिए भूखण्ड के कुछ प्रमुख दोषों का विचार करना अत्यंत आवश्यक है। ये दोष हैं - भूमि में घनत्व न होना या पोली होना, शल्य दोष, अनुचित ढलान, वेध एवं निषिध्द आकार आदि। इन दोषों का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है -

१. यदि भूमि ठोस न हो या उसमें दीमक, चीटीं एवं अजगर के बिल हो अथवा राख, भूसा, रेत या कपड़ा हो अथवा उस जमीन में शल्य हो तो ऐसी भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए।

   यदि ऐसी जगह पर मकान बनाना अल्पावश्यक हो, तो उस भूमि को साड़े तीन हाथ लगभग ६ फुट गहरा खुदवा कर उसका मलवा निकालकर अच्छी मिट्टी या पत्थर के छोटे टूकड़ों से भरवाकर उस पर मकान बनाया जा सकता है।

   इस विषय में वास्तु ग्रन्थों का सर्वसम्मत रूप से निर्देश यह है, कि फॅटी या दरारवाली, शल्यवाली, दीमकवाली, पोली और बहुत ऊंची-नीची (ऊबड़-खाबड़) जमीन को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है, यथा -

स्फुरिता च सशल्या च वल्मीकाऽरोहिणी तथा ।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ।।

२. भूमि का ढ़लान पूर्व और उत्तर दिशा की ओर होना शुभ तथा भूमि का ढ़लान पश्चिम एवं दक्षिण की ओर होना निषिध्द माना गया है। इसी

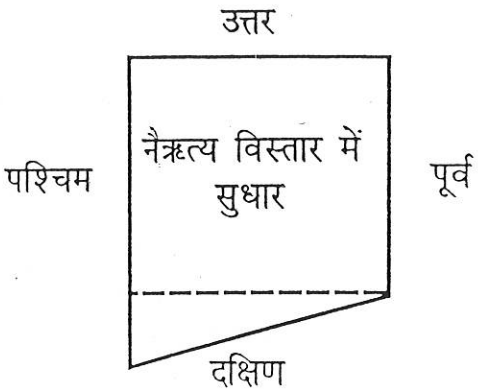
प्रकार भूखण्ड के बीच में या दक्षिण एवं पश्चिम गड्ढे होना अशुभ होता है।

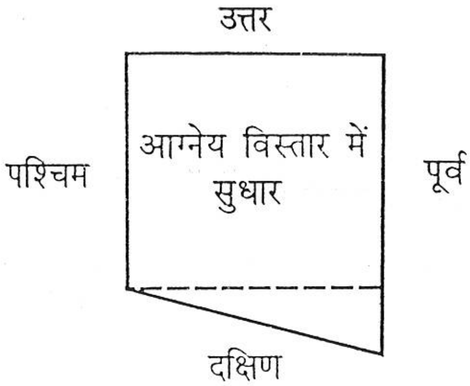
इस प्रकार का भूखण्ड भवन निर्माण के लिए अच्छा नहीं होता। यदि इस प्रकार के भूखण्ड पर आवासीय, व्यावसायिक, औद्योगिक या धार्मिक किसी भी प्रकार का भवन बनाना आवश्यक हो, तो प्लाट पर चिकनी मिट्टी डालकर गड्ढों को भरवा देना चाहिए और उसका ढ़लान सुविधानुसार पूर्व या उत्तर की ओर करवा देना चाहिए।

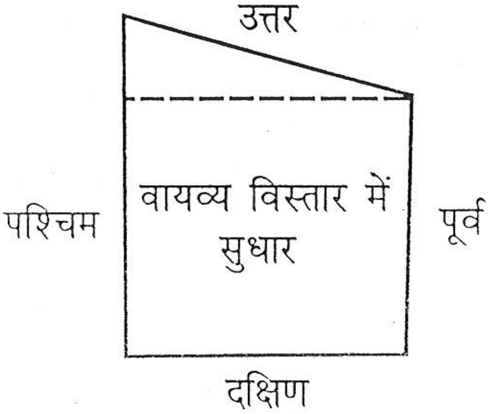
३. यदि भूखण्ड के सामने मन्दिर, धर्मस्थान, खम्बा, कुआ अथवा दोराहा हो, तो भूखण्ड पर वेध होता है। और यहॉ मकान बनाने से अनेक प्रकार की परेशानियॉ पैदा होती हैं। सामान्यतया ऐसे भूखण्ड पर भवन नहीं बनाना चाहिए। यदि ऐसे भूखण्ड पर भवन बनाना आवश्यक हो, तो वेध की दिशा को छोड़कर अन्य शुभदिशा में द्वार रखना चाहिए और मार्ग वेध के सामने दूकान बना देनी चाहिए।

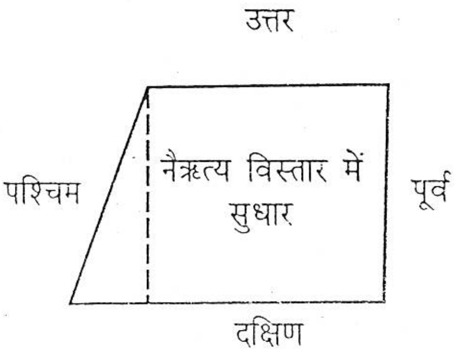
४. भूखण्ड वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार एवं भद्रासन सभी प्रकार के भवनों को बनाने के लिए शुभ होते हैं। भूखण्ड का विस्तार ईशान को छोड़कर अन्य सभी कोणों पर अशुभ होता है। इसी प्रकार कटान आग्नेय एवं वायव्य के अलावा अन्य कोणों पर अशुभ माना जाता है।

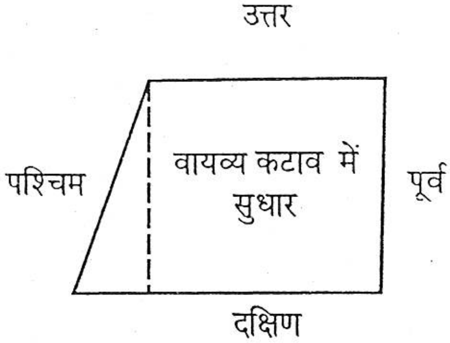
सामान्यतया विस्तार या कटान वाले भूखण्डों को छोड़कर शुभ आकार वाले भूखण्ड पर निर्माण करना चाहिए। यदि विस्तार या कटान वाले भूखण्ड पर अथवा निषिध्द आकार वाले भूखण्ड पर मकान बनाना आवश्यक हो तो उसमें सुधार कर उसकी आकृति चौकोर कर लेनी चाहिए, यथा –

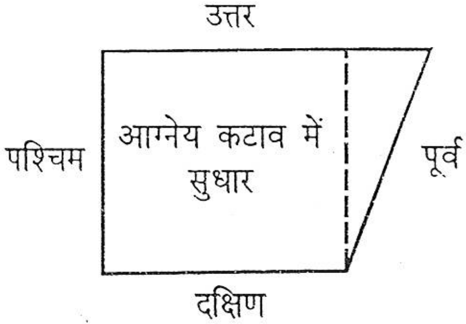

उत्तर
पश्चिम
नैऋत्य विस्तार में सुधार
पूर्व
दक्षिण


उत्तर
पश्चिम
आग्नेय विस्तार में सुधार
पूर्व
दक्षिण

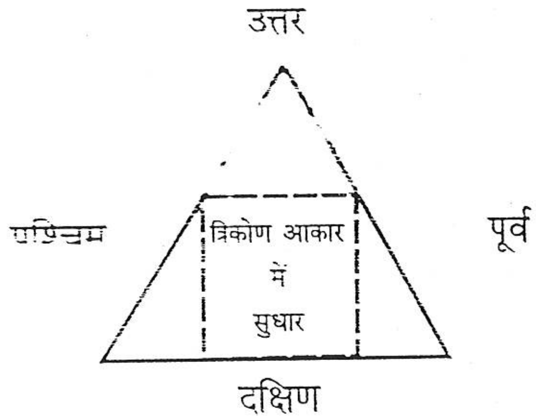

उत्तर
पश्चिम
वायव्य विस्तार में सुधार
पूर्व
दक्षिण

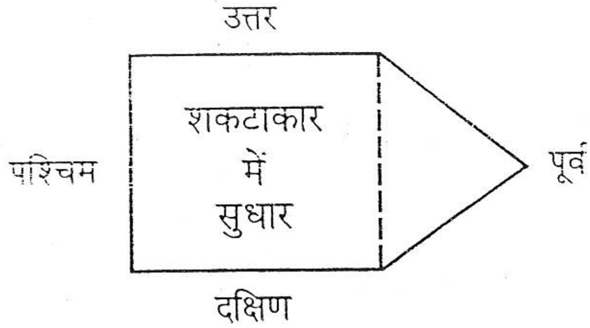

उत्तर
पश्चिम
नैऋत्य विस्तार में सुधार
पूर्व
दक्षिण

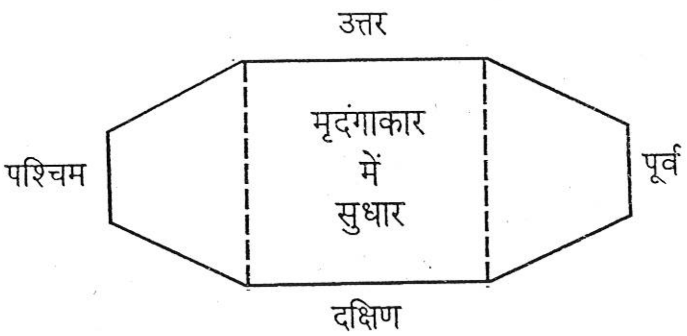

उत्तर
पश्चिम
वायव्य कटाव में सुधार
पूर्व
दक्षिण

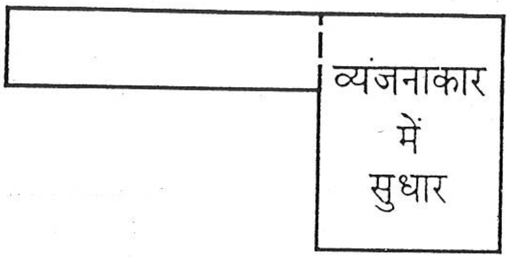

उत्तर
पश्चिम
आग्नेय कटाव में सुधार
पूर्व
दक्षिण

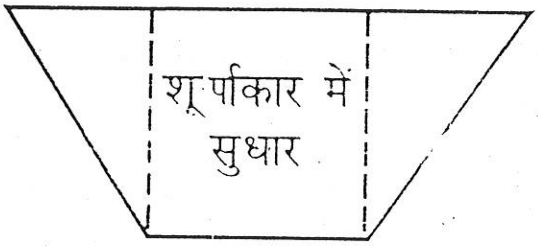
निषिध्द आकृतियों के भूखण्डों पर निर्माण नहीं करना चाहिए। उन्हें छोड़ देना श्रेयस्कर है। किन्तु आज परिस्थितियों के दबावश यदि उन पर भवन बनाना आवश्यक हो, तो उनमें इस प्रकार का सुधार कर लेना कि भूखण्ड चौकोर बन जाय, यथा-

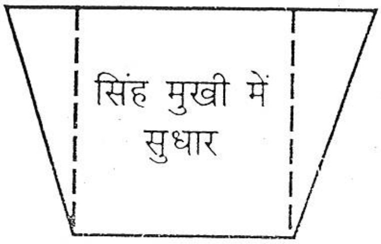


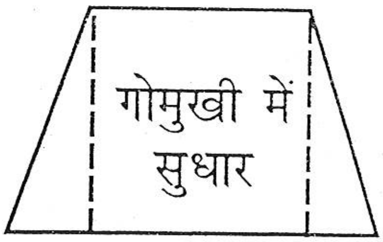


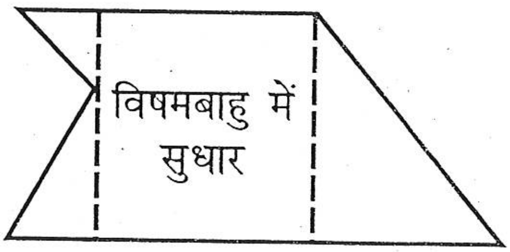



व्यंजनाकार में सुधार


शूर्पाकार में सुधार


सिंह मुखी में सुधार


गोमुखी में सुधार


विषमबाहु में सुधार

इस प्रकार निषिध्द आकार वाले भूखण्ड में से चौकोर आकार निकालने या सुधार करने के बाद बची जमीन में पूर्व, उत्तर की ओर घास, पौधों की क्यारी, फुहारें एवं झरना आदि तथा पश्चिम, दक्षिण में बड़े पेड़ लगाये जा सकते हैं। क़िन्तु सुधार से बची जमीन पर किसी प्रकार का निर्माण नहीं करना चाहिए।

भवन में वास्तु दोषों का समाधान

भवन निर्माण के समय जाने-अनजाने में अनेक प्रकार के वास्तुदोष हो जाते हैं। ये दोष-कभी अपनी पसन्द, कभी अपने परिचित या मित्र के मकान का अनुकरण और बहुधा छोटे भूखण्ड या महानगरों की परिस्थितियों के दवाब में हो जाते है। कभी-कभी लोग बना बनाया मकान खरीद लेते हैं, जिसमें वास्तु दोष होते हैं।

लोगों को वास्तु दोषों का तभी ध्यान आता है, जब उनके घर-परिवार में, व्यापार-रोजगार में या उद्योग धन्धे में लगातार समस्या एवं संकटों का सिलसिला चलने लगता है। आज बहुत कम लोग हैं, जो भवन निर्माण के समय वास्तु के नियमों का ध्यान रखते हैं। आज सिविल इंजीनियर, आर्किटेक्ट, ठेकेदार एवं मिस्त्रियों को ही वास्तु की जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में मकान बनाते समय और बने बनाये मकान में वास्तु दोषों का रह जाना स्वाभाविक है। यदि भवन बनाते समय कुछ एक बातों को ध्यान में रखा जाय, तो इन दोषों से बचा जा सकता है।

१. मकान में वास्तुशास्त्र के अनुसार विविध कार्यो के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं में विभिन्न कक्षों के निर्माण का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इन कमरों के लिए वैकल्पिक दिशा भी निर्धारित है। यदि मकान में कोई कक्ष विपरीत दिशा में हो तो उसे उचित स्थान पर बदल लेना चाहिए।

कमरे	निर्धारित दिशा	वैकल्पिक दिशा
१. पूजाघर	ईशान कोण	ईशान एवं पूर्व के बीच, पूर्व, ईशान एवं उत्तर के बीच एवं उत्तर
२. बरामदा	पूर्व, उत्तर	ईशान, उत्तर एवं ईशान के बीच
३. बेसमेन्ट	पूर्व, उत्तर	ईशान, उत्तर एवं ईशान के बीच
४. रसोई घर	आग्नेय	आग्नेय एवं दक्षिण के बीच, आग्नेय एवं पूर्व के बीच, वायव्य एवं उत्तर के बीच
५. शयनकक्ष	दक्षिण	आग्नेय दक्षिण के बीच, नैऋत्य दक्षिण के बीच, पश्चिम नैऋत्य के बीच, उत्तर एवं वायव्य के बीच
६. भोजन कक्ष	पश्चिम	आग्नेय एवं दक्षिण के बीच, पश्चिम एवं वायव्य के बीच, वायव्य, उत्तर एवं वायव्य के बीच
७. बैठक/ड्राइंग-रूम	पूर्व	ईशान, ईशान एवं पूर्व के बीच, आग्नेय दक्षिण के बीच, पश्चिम वायव्य, वायव्य एवं उत्तर के बीच
८. स्टोर	नैऋत्य	दक्षिण एवं आग्नेय के बीच, वायव्य, दक्षिण एवं नैऋत्य के बीच, पश्चिम

२. यदि भवन के दक्षिण एवं पश्चिम में उत्तर एवं पूर्व की तुलना में खुला स्थान अधिक हो, तो यह वास्तु दोष है। इसके समाधान के लिए दक्षिण एवं पश्चिम में उचित निर्माण कर वह भाग छोटा हो जायेगा और दोष भी दूर हो जायेगा।

३. भवन का पश्चिमी एवं दक्षिणी भाग ऊंचा होना चाहिए। यदि यह ऊंचा न हो और पूर्वी या उत्तरी हिस्सा ऊंचा हो तो यह वास्तु दोष है। इसके लिए या तो पश्चिम एवं दक्षिण में उचित निर्माण कर ऊंचाई बढ़ा लेनी चाहिए अथवा पूर्व एवं उत्तर में अनावश्यक निर्माण तोड़कर सुधार कर लेना चाहिए।

४. छत के ऊपर पानी की टंकी पूर्व एवं उत्तर में रखना वास्तु दोष है। इसके लिए टंकी को वहां से हटा कर पश्चिम या दक्षिण में ले जाना श्रेयस्कर है।

५. नैऋत्य, दक्षिण एवं पश्चिम में गड्ढ़ा, भूमिगत टैंक एवं सैप्टिक टैंक बनाना वास्तु दोष है। इसके समाधानार्थ इनको भरवा देना चाहिए और भूमिगत वाटर टैंक तथा सैप्टिक टैंक को पूर्व या उत्तर में स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

६. आग्नेय, नैऋत्य एवं दक्षिण में कुँआ, बोरिंग एवं भूमिगत पानी की टंकी होना वास्तुदोष है। अतः इनको बन्द करा देना श्रेयस्कर है। इनको ईशान कोण के पास कुछ हटकर पूर्व या उत्तर में बनाना इसका सही समाधान है।

७. भवन का मुख्य द्वार निर्दिष्ट स्थान पर न होना या द्वार पर वेध होना वास्तु दोष है। इसके समाधान के लिए द्वार को उचित दिशा में

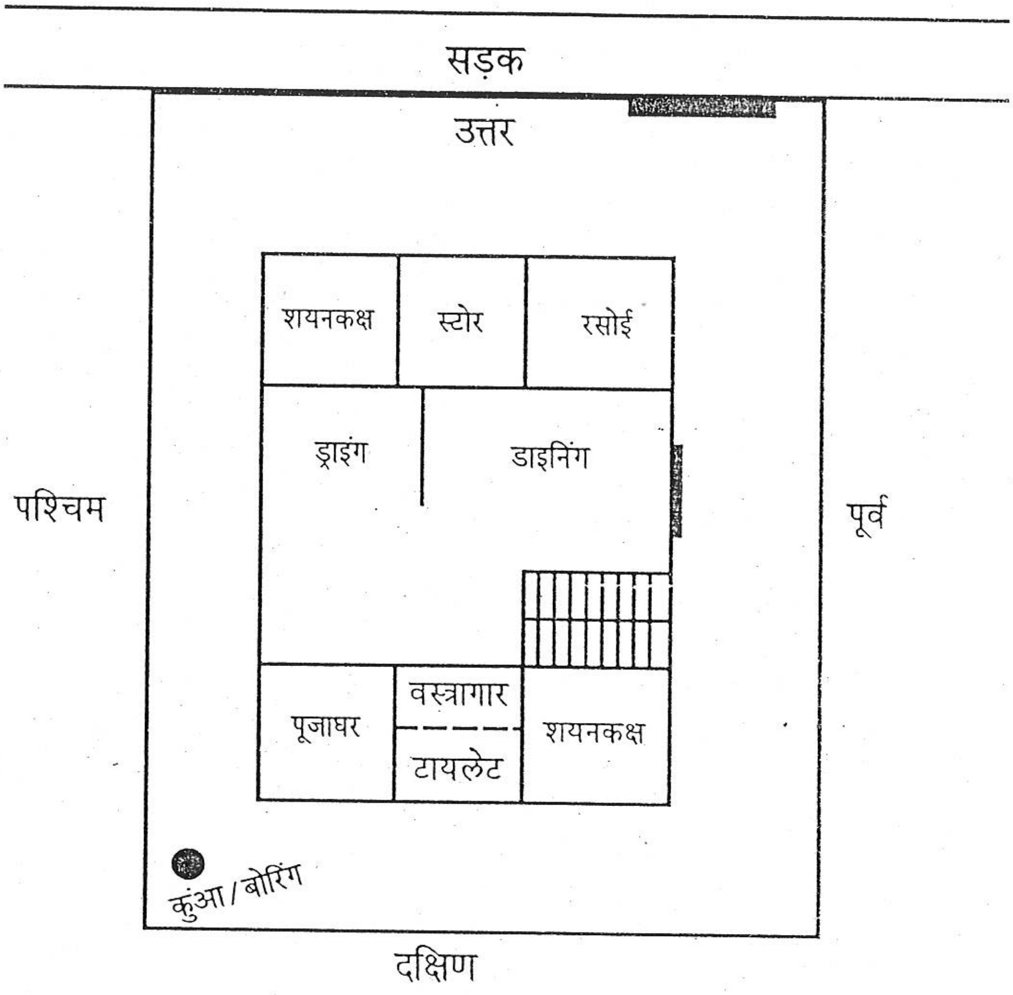
स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

८. कमरों के अन्दर की व्यवस्था में वास्तु दोष हो, तो उसमें परिवर्तन कर सुधार कर लेना चाहिए।

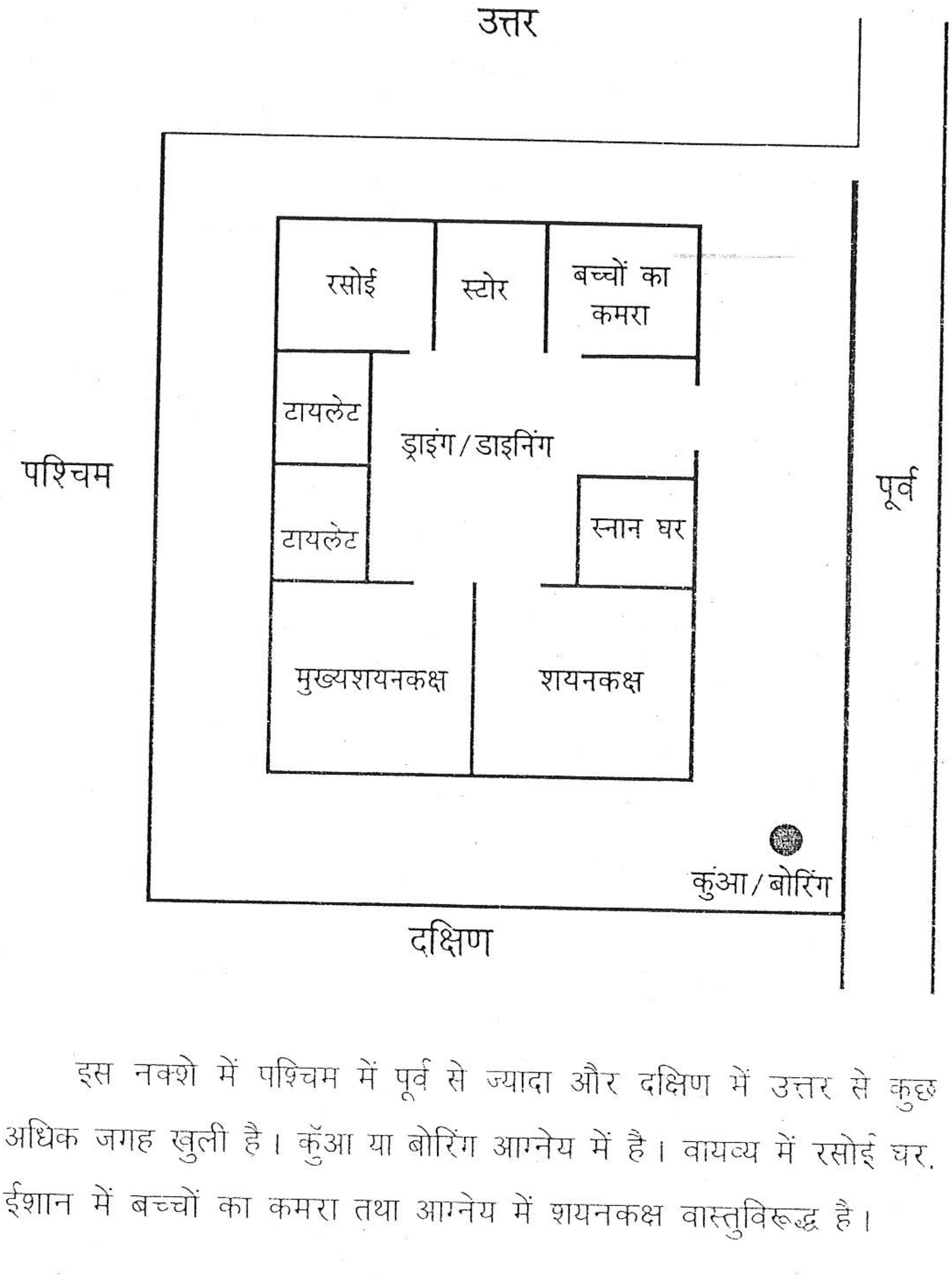
९. दूकान, शोरूम एवं कार्यालय की आंतरिक व्यवस्था दोष पूर्ण हो, तो उसमें अविलम्ब सुधार कर लेना चाहिए।

१०. पूजा पाठ करते समय, भोजन करते समय, अध्ययन करते समय दूकान या कार्यालय में अपनी सीट पर बैठते समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह रखने से छोटे-मोटे वास्तु दोष दूर हो जाते हैं।

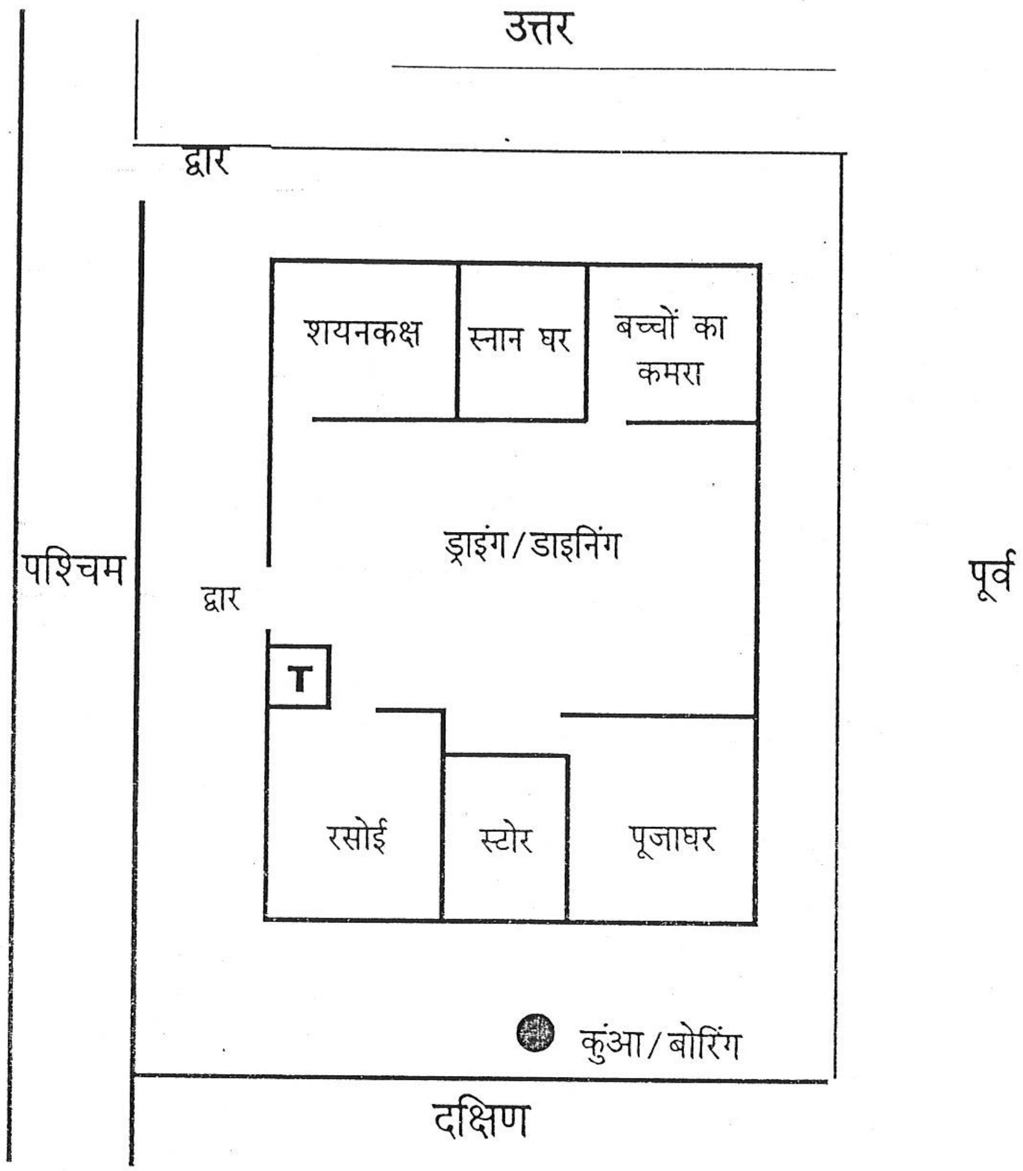
वास्तु - विरूद्ध नक्शे



इस नक्शे में ईशान में रसोई घर, नैऋत्य में पूजाघर आग्नेय में शयनकक्ष एवं नैऋत्व्य में कुँआ या बोरिंग वास्तु के विरूद्ध है।

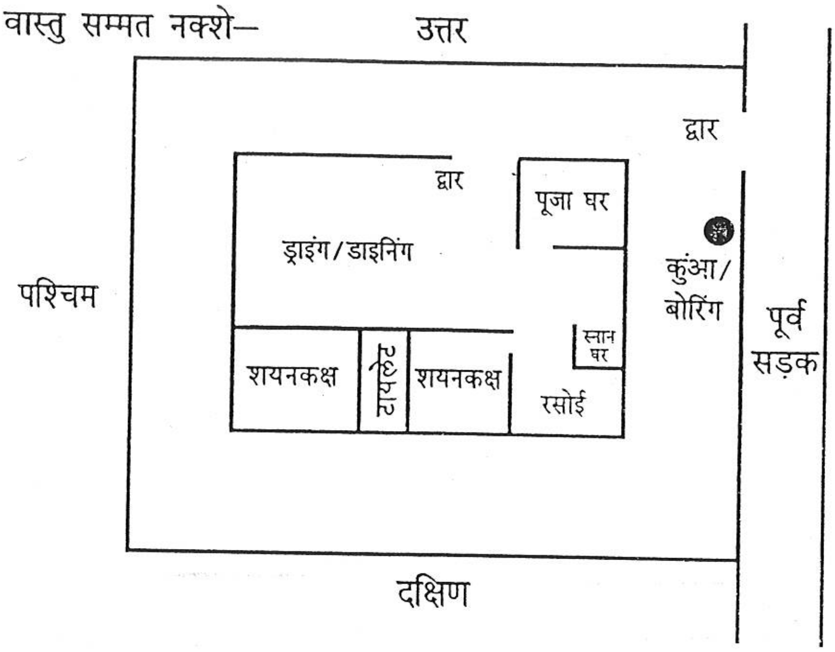


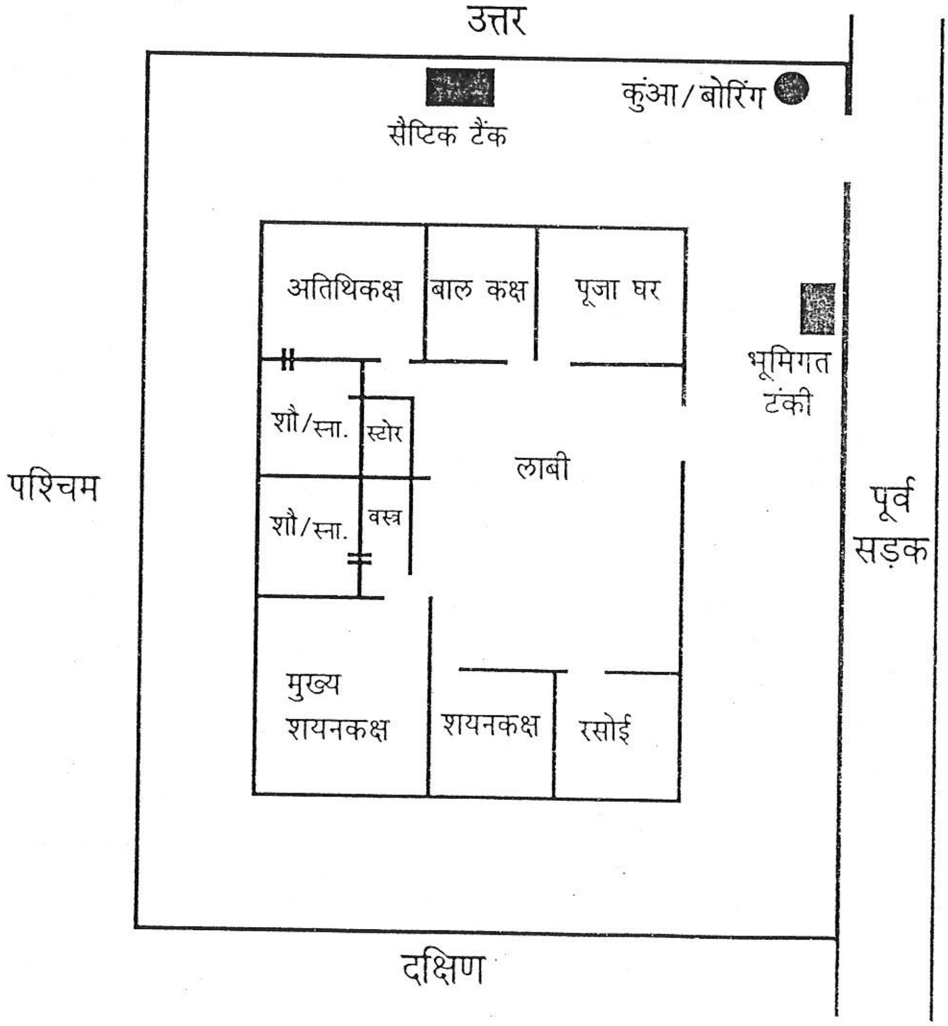
इस नक्शे में पश्चिम में पूर्व से ज्यादा और दक्षिण में उत्तर से कुछ अधिक जगह खुली है। कुँआ या बोरिंग आग्नेय में है। वायव्य में रसोई घर, ईशान में बच्चों का कमरा तथा आग्नेय में शयनकक्ष वास्तुविरूद्ध है।

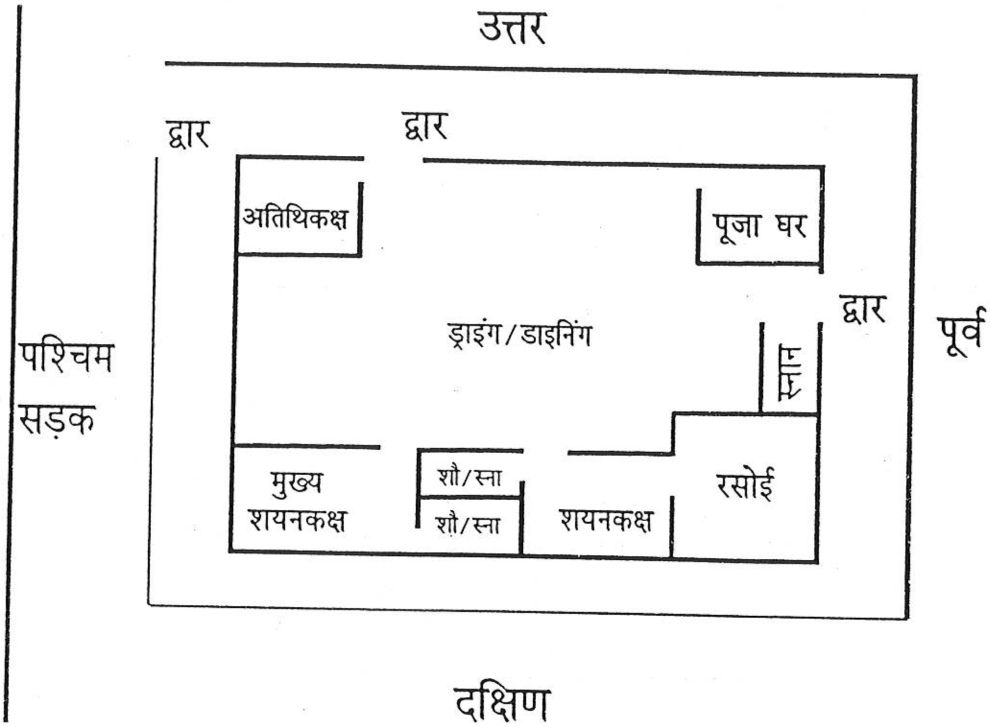


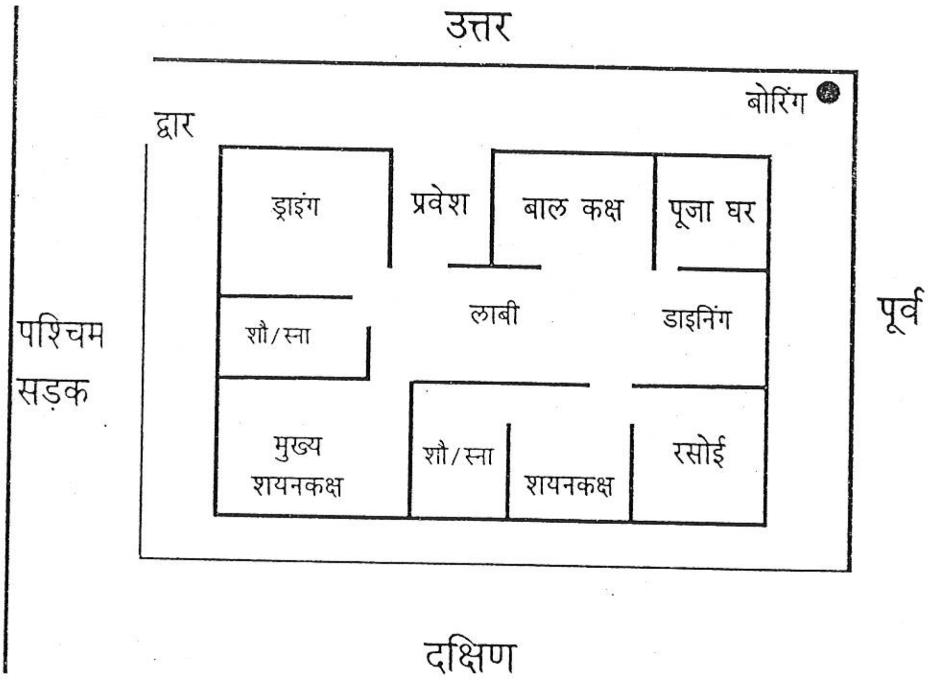
इस नक्शे में दक्षिण में कुँआ/बोरिंग सही नहीं है। साथ ही पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में और उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक खुली जगह है। नैऋत्य में रसोई, आग्नेय में पूजाघर और ईशान में बच्चों का कमरा सही नहीं है।

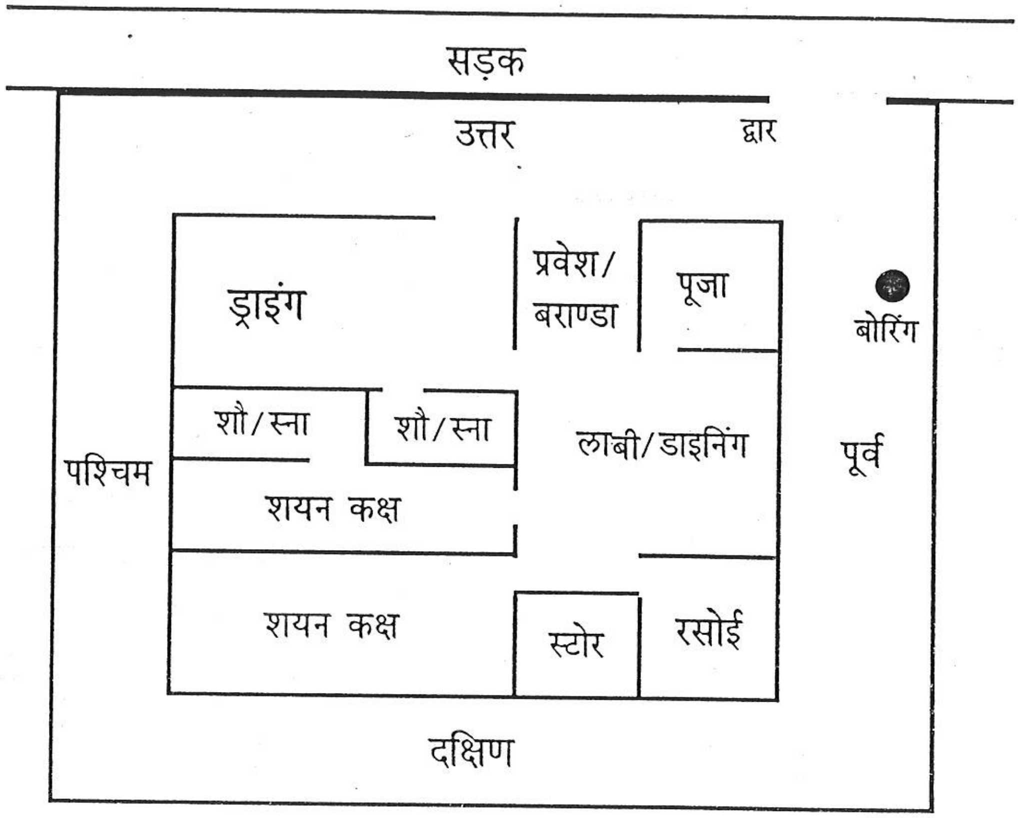
वास्तु सम्मत नक्शे—

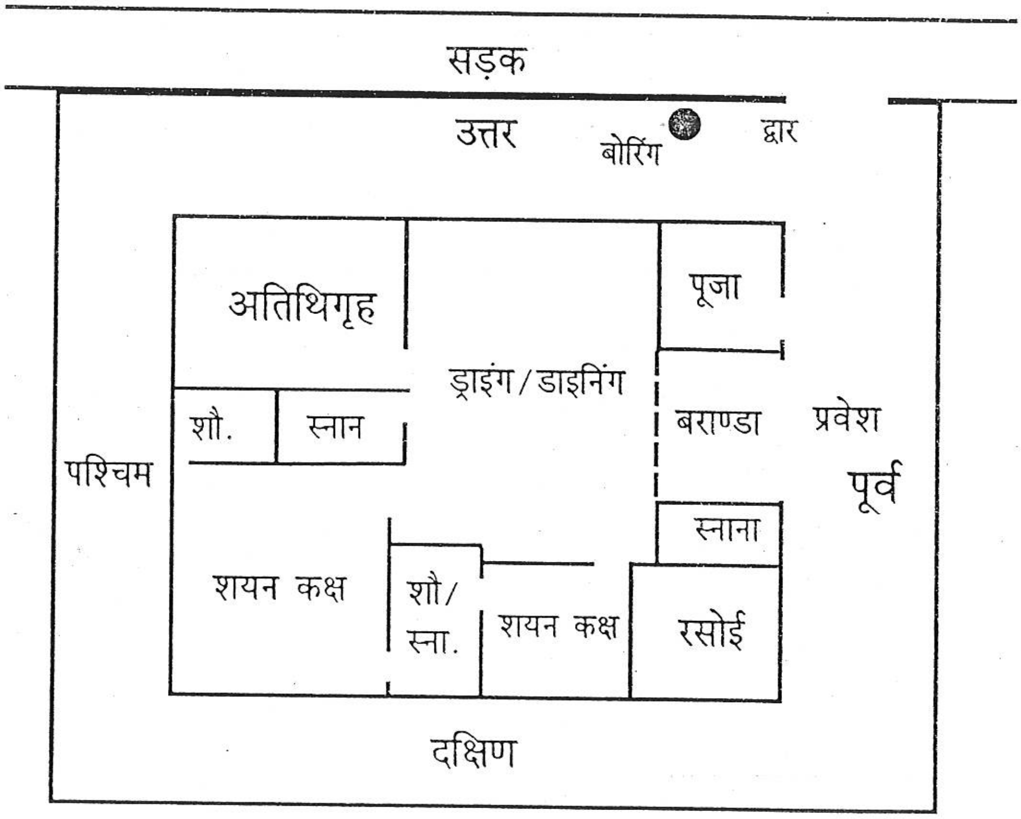

उत्तर
द्वार
द्वार
पूजा घर
ड्राइंग/डाइनिंग
कुंआ/
बोरिंग
पश्चिम
पूर्व
सड़क
स्नान
घर
शयनकक्ष
शौचालय
शयनकक्ष
रसोई
दक्षिण


उत्तर
कुंआ/बोरिंग
सैप्टिक टैंक
अतिथिकक्ष
बाल कक्ष
पूजा घर
भूमिगत
टंकी
शौ/स्ना.
स्टोर
लाबी
पश्चिम
पूर्व
सड़क
शौ/स्ना.
वस्त्र
मुख्य
शयनकक्ष
शयनकक्ष
रसोई
दक्षिण


उत्तर
द्वार
द्वार
अतिथिकक्ष
पूजा घर
द्वार
पूर्व
ड्राइंग/डाइनिंग
पश्चिम
सड़क
स्नान
मुख्य
शयनकक्ष
शौ/स्ना
शौ/स्ना
शयनकक्ष
रसोई
दक्षिण


उत्तर
बोरिंग
द्वार
ड्राइंग
प्रवेश
बाल कक्ष
पूजा घर
पूर्व
पश्चिम
सड़क
शौ/स्ना
लाबी
डाइनिंग
मुख्य
शयनकक्ष
शौ/स्ना
शयनकक्ष
रसोई
दक्षिण


सड़क
उत्तर
द्वार
प्रवेश/
बराण्डा
पूजा
ड्राइंग
बोरिंग
शौ/स्ना
शौ/स्ना
लाबी/डाइनिंग
पश्चिम
पूर्व
शयन कक्ष
शयन कक्ष
स्टोर
रसोई
दक्षिण


सड़क
उत्तर
बोरिंग
द्वार
अतिथिगृह
पूजा
ड्राइंग/डाइनिंग
शौ.
स्नान
बराण्डा
प्रवेश
पश्चिम
पूर्व
स्नाना
शयन कक्ष
शौ/
स्ना.
शयन कक्ष
रसोई
दक्षिण

वास्तु शास्त्र - *पचास सूत्रों में*

नवीन भवन का निर्माण, पुराने की मरम्मत या वांस्तु दोष का सुधार करना हो - वास्तु शास्त्र के इन पचांस सूत्रों को हृदयंगम कर लेने से इस शास्त्र का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। ये सूत्र आम जनता के लिए तो उपयोगी हैं ही, साथ ही सिविल इंजीनियर, आर्किटेक्ट, ठेकेदार, मिस्त्री और भवन निर्माण से जुड़ी कम्पनियों के अधिकारियों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

१. जिस जमीन में दरारें हों, रेतीली हों, दीमक हो, पोली हो या जिसमें शल्य हो - उसमें मकान नहीं बनाना चाहिए।

२. जिस जमीन का घनत्व ठोस न हो या जो दलदली हो - उस पर मकान नहीं बनाना चाहिए।

३. जिस जमीन में खेती, पेड़ एवं पौधें तेजी से बढ़ते हों, जिसकी मिट्टी चिकनी हो, पानी बहुत नीचे न हो या पथरीली हो, वह भूमि मकान बनाने के लिए अच्छी होती है।

४. जिस जगह जाने पर मन में प्रसन्नता हो और जो जगह देखने में सुन्दर लगे- वहां मकान बनाना चाहिए।

५. भूखण्ड का आकार-वर्गाकार, आयताकार, भद्रासन एवं वृत्ताकार सभी प्रकार के भवनों का निर्माण करने के लिए शुभ होता है। गोमुखी भूखण्ड पर आवासीय भवन और सिंह मुखी पर व्यावसायिक भवन बनाना शुभ होता है। इसके अलावा षड़भुजाकार एवं अष्टभुजाकार भूखण्ड भी शुभ होता है।

६. त्रिभुजाकार, विषम बाहु, चक्राकार, सूर्पाकार, अर्ध वृत्ताकार, अण्डाकार, शकटाकार, धनुषाकार विजनाकार, कूर्मपृष्ठाकार, ताराकार, त्रिशूलाकार, पक्षीमुख एवं कुम्भाकार भूखण्ड अशुभ होते हैं।

७. त्रिभुजाकार आदि अशुभ भूखण्डों पर मकान बनाना अत्यावश्यक हो, तो उनके बीच में चौकोर आकृति निकाल कर सुधार करना चाहिए। और बची जमीन पर दिशा के अनुसार पेड़-पौधें एवं घास लगानी चाहिए। इस सुधार के बाद वहां मकान बनाया जा सकता है। फिर भी ऐसा भूखण्ड मध्यम फलदायक होता है।

८. विशाल भूखण्ड ऐश्वर्यदायक होता है। किन्तु वह किसी तरफ से कटा-फटा नहीं होना चाहिए।

९. दो बड़े भूखण्डों के बीच छोटा-सा सकड़ा भूखण्ड अच्छा नहीं होता। उस पर आवासीय भवन नहीं बनाना चाहिए।

१०. भूखण्ड की लम्बाई उत्तर-दक्षिण की अपेक्षा पूर्व-पश्चिम में अधिक हो, तो शुभ होती है।

११. भूखण्ड का ढ़लान पूर्व एवं उत्तर की ओर होना अच्छा होता है, पश्चिम एवं दक्षिण की ओर नहीं।

१२. भूखण्ड़ के बीच में पश्चिम, नैऋत्य, आग्नेय, वायव्य एवं दक्षिण में कुँआ, बोरिंग, भूमिगत टंकी, सैप्टिक टैंक या किसी प्रकार का गड्ढ़ा शुभ नहीं होता।

१३. भूखण्ड पर आसपास के भूखण्डों का पानी बहकर आना या भूखण्ड का आसपास के धरातल से नीचा होना शुभ नहीं होता।

१४. भवन बनाते समय पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में और दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में अधिक खाली जगह छोड़नी चाहिए।

१५. भूखण्ड के पश्चिम एवं दक्षिण में ऊंचे पेड़, पहाड़ी, चट्टान. टीला एवं ऊंचे मकान शुभ होते हैं- पूर्व एवं उत्तर में नहीं।

१६. भूखण्ड के चारों ओर, उत्तर या पूर्व में सड़क होना शुभ होता है।

पश्चिम में सड़क होना, पूर्व एवं पश्चिम में दोनों ओर सड़क होना या उत्तर एवं दक्षिण में दोनों ओर सड़क होना मध्यम होता है।

१७. आवासीय भूखण्ड के बिलकुल पास में श्मशान, कब्रिस्तान, मन्दिर, सिनेमा या सार्वजनिक स्थान होना अच्छा नहीं होता।

१८. भवन का द्वार पूर्व या उत्तर में रखना श्रेष्ठ है। पश्चिम में द्वार सामान्य है। दक्षिण में द्वार नहीं रखना चाहिए। द्वार के ऊपर द्वार नहीं बनाना चाहिए। किन्तु यह नियम बहुमंजिले भवनों में लागू नहीं होता।

१९. पूजाघर के लिए ईशान कोण श्रेष्ठ है। यह पूर्व एवं उत्तर में बनाया जा सकता है।

२०. रसोई घर, भट्टी, फरनेस एवं वायलर आदि आग्नेय में श्रेष्ठ होते हैं। इनको आग्नेय के पास दक्षिण एवं पूर्व में भी बनाया जा सकता है।

२१. देवालय एवं धर्मस्थल में द्वार चारों दिशा में बनाया जा सकता है।

२२. शयनकक्ष दक्षिण में श्रेष्ठ होता है। यह ईशान, आग्नेय एवं पूर्व को छोड़कर कहीं भी बनाया जा सकता है।

२३. भारी वस्तुओं का स्टोर नैऋत्य में और बिक्री के लिए तैयार माल या रोजमर्रा के काम की चीजों का स्टोर वायव्य में बनाना अच्छा होता है।

२४. अध्ययन कक्ष वायव्य, उत्तर एवं पूर्व में बनाना शुभ होता है।

२५. भोजन कक्ष पश्चिम में बनाना श्रेष्ठ है। यह कक्ष आग्नेय एवं पूर्व के बीच, आग्नेय एवं दक्षिण के बीच वायव्य एवं उत्तर के बीच तथा मकान के बीच में ब्रह्मस्थान को छोड़कर बनाया जा सकता है।

२६. हवेली के बीच में ऑगन बनाना श्रेष्ठ है। इसका ढ़ाल पूर्व या उत्तर की ओर होना चाहिए।

२७. बेसमेन्ट आधे से कम भाग पर बनाना चाहिए। यह पूर्वी एवं उत्तरी भाग में बनाना अच्छा होता है।

२८. ड्राइंग रूम या लिविंग रूम आग्नेय एवं दक्षिण के बीच, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य एवं पश्चिम के बीच, उत्तर एवं वायव्य बीच में बनाया जा सकता है।

२९. आवासीय भवन में दक्षिण एवं नैऋत्य के बीच, उत्तर एवं ईशान के बीच तथा पूर्व में ऑफिस बनाना चाहिए।

३०. पोर्टिको ईशान, पूर्व, उत्तर एवं पश्चिम में बनाना उपयुक्त होता है।

३१. गोबरगैस प्लान्ट ईशान, पूर्व, आग्नेय या उत्तर में बनाना श्रेष्ठ है।

३२. शयन कक्ष में सोते समय सिरहाना दक्षिण या पश्चिम में रखना चाहिए। उत्तर की ओर सिरहाना सर्वथा वर्जित है।

३३. शौचालय में शौच के समय मुख उत्तर या दक्षिण की ओर होना चाहिए।

३४. छत के ऊपर पानी की टंकियाँ दक्षिण एवं पश्चिम में रखनी चाहिए। पूर्व, उत्तर या ईशान में कदापि नहीं रखना चाहिए।

३५. भवन की दीवारें दक्षिण एवं पश्चिम में ऊंची तथा उत्तर एवं पूर्व में नीची रखनी चाहिए।

३६. सभी द्वार एवं खिड़कियों की ऊंचाई समान सूत्र में रखनी चाहिए।

३७. कमरों में अलमारी, सोफा, पलंग या स्थायी रूप से रखने वाला भारी सामान दक्षिण नैऋत्य या पश्चिम नैऋत्य में रखना चाहिए।

३८. सिंहमुखी भूखण्ड पर व्यावसायिक भवन का निर्माण शुभ होता है। गोमुखी पर नहीं।

३९. व्यावसायिक भवन के लिए समीप में मन्दिर धर्मस्थल, सिनेमा, चौराहा

एवं सार्वजनिक स्थान होना अच्छा होता है।

४०. मन्दिर में गर्भगृह, प्रांगण, द्वार एवं शिखर का निर्माण वास्तु के अनुसार करना चाहिए।

४१. भवन से जल एवं मल की निकासी वायव्य, उत्तर एवं पूर्व दिशा में होनी चाहिए।

४२. भवन में अधिकतम तीन तरह की लकड़ी का इस्तेमाल कर सकते हैं। नये भवन में पुरानी लकड़ी का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

४३. बने बनाये भवन का विस्तार चारों दिशाओं में करना या उत्तर एवं पूर्व की ओर करना श्रेष्ठ है।

४४. भूखण्ड की मिट्टी पोली हो या शल्य दोष हो, तो उसकी मिट्टी खुदवा कर-निकाल कर नई मिट्टी का भराव कर उस पर भवन बनाया जा सकता है।

४५. भवन की आन्तरिक साज-सज्जा में युद्ध एवं दुर्घटना के चित्र, पत्थर एवं लकड़ी से बनी शेर, चीता, सुअर, सियार, सर्प, उल्लू, कबूतर, कौआ, बाज तथा बगुले की मूर्ति रखना शुभ नहीं माना जाता। देवताओं की मूर्ति पूजाघर में पूजा एवं ध्यान के लिए रखना उचित है, सजावट के लिए नहीं।

४६. भवन का शिलान्यास एवं गृह प्रवेश शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए।

४७. पुराने घर की मरम्मत के बाद, वास्तु दोष के सुधार के बाद एवं गृह प्रवेश के समय वास्तु शान्ति एवं अपने धर्मानुसार अनुष्ठान करना चाहिए।

४८. पंचमहाभूतों के तालमेल के साथ निर्मित भवन का संतुलन एवं प्राकृतिक शक्तियों का प्रबन्धन वास्तु-शास्त्र कहलाता है।

४९. यह शास्त्र वातावरण का विचार कर उसमें विद्यमान गुरुत्त्व शक्ति, चुम्बकीय शक्ति एवं सौरऊर्जा का उपयोग कर तन,मन, एवं जीवन को स्वत: स्फूर्त करने के नियमों का प्रतिपादन करता है।

५०. वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र में अंग एवं अंगी भव सम्बन्ध है। अत: वास्तुशास्त्र के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से विचार करने पर जीवन की समस्या एवं संकटों के समाधान में सीलता रहती है।

गृहप्रवेश का मुहूर्त

गृहप्रवेश वास्तुनिर्माण, जीर्णोध्द्वार, वास्तु सुधार एवं लम्बी यात्रा से लौटने के बाद का सबसे महत्वपूर्ण क्षण है, जब गृह स्वामी अपने घर में कदम रखता है। अत: इसके मुहूर्त का विचार सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

वास्तु ग्रन्थों में गृह प्रवेश के तीन भेद बतलाये गये हैं - १. अपूर्व, २. सपूर्व, एवं ३. द्वन्द। जिस नवनिर्मित भवन में पहिली बार आवास, व्यवसाय या अन्य कार्य के लिए प्रवेश किया जाता है, वह अपूर्व गृहप्रवेश कहलाता है। जिस पूर्व निर्मित भवन में लम्बी यात्रा के बाद आवास के लिए या जिस दूकान, ऑफिस या औद्योगिक इकाई में लम्बे समय की बन्दी के बाद काम शुरू किया जाता है, वह सपूर्व गृहप्रवेश कहा जाता है। और जिस किसी कारण टूटे-फूटे या पुराने भवन का जीर्णोद्धार करने के बाद या वास्तुदोषों का सुधार करने के बाद आवास या व्यवसाय के लिए प्रवेश किया जाता है, वह द्वन्द संज्ञक गृहप्रवेश कहलाता है। (८४)

---

८४. बृहद वास्तुमाला श्लो० १ पृ० १०३

इन तीनों प्रकार के गृहप्रवेशों का वास्तु शास्त्र एवं मुहूर्त शास्त्र के आचार्यो ने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है।

इन तीन प्रकार के गृह प्रवेशों में से अपूर्व एवं सपूर्व गृह प्रवेश का मुहूर्त अलग प्रकार से तथा द्वन्द (जीर्ण) गृह प्रवेश का मुहूर्त अन्य प्रकार से निर्धारित किया जाता है।

नूतन गृह प्रवेश

नवनिर्मित भवन में या यात्रा आदि के बाद लम्बे समय के बाद सपूर्व गृह प्रवेश में केवल इतना अन्तर होता है, कि यात्रा आदि से लौटने पर गृह प्रवेश रात्रि में नहीं होता, जब कि नूतन गृह प्रवेश दिन और रात्रि दोनों में शुभ-लग्न में किया जाता है। [८५]

गृह प्रवेश गुर्वस्त एवं शुक्रास्त के समय में वर्जित है। यह उत्तरायण में श्रेष्ठ माना जाता है। [८६] गृह प्रवेश फाल्गुन, वैशाख एवं ज्येष्ठ मास में प्रशस्त होता है। मतान्तर से माघ मास भी अच्छा माना गया है। इसके अलावा कार्तिक एवं मार्ग शीर्ष मास गृह प्रवेश के लिए मध्यम और आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, पौष एवं चैत्र मास वर्जित हैं। [८७]

---

८५. तत्रैव श्लो० २

८६. शुभ: प्रवेश: दैवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयो:।
तत्रैव श्लो० १०

८७. तत्रैव श्लो० ४ एवं ५

नूतन गृह प्रवेश मुहूर्त

मास	बैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुन एवं माघ श्रेष्ठ, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष मध्यम
पक्ष	शुक्लपक्ष प्रशस्त कृष्णपक्ष की दशमी तक
तिथि	२, ३, ५, ६, ७, १०, ११ एवं १३ तिथियॉ
वार	सोम, बुध, गुरू एवं शुक्रवार
नक्षत्र	रोहि, मृग, उ. फा, उ. षा, उ. भा, चित्रा, अनु, रेवती
लग्न	वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ उत्तम, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन मध्यम
लग्न शुद्धि	लग्न से १, २, ३, ५, ७, ९, १० एवं ११ भाव में शुभग्रह तथा ३, ६ एवं ११ में पाप ग्रह शुभ। ४ एवं ८ वाँ भावशुद्ध

कलश (कुम्भ) चक्र

गृह प्रवेश के नक्षत्र शुद्धि के लिए कलश या कुम्भचक्र का उपयोग किया जाता है। इस चक्र के अनुसार सूर्य के नक्षत्र से गृहप्रवेश के नक्षत्र तक गणना की जाती है। इस गणनाक्रम में प्रारंभिक ५ नक्षत्र अशुभ अगले ८ नक्षत्र शुभ, फिर ८ नक्षत्र अशुभ और अन्तिम ६ नक्षत्र शुभ होते हैं। इस चक्र से शुद्ध नक्षत्र गृह प्रवेश में ग्राहय होता है।

कलशचक्र [८८]

स्थान/दिशा	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	नीचे	कण्ठ
नक्षत्र संख्या	१	४	४	४	४	४	३	३
फल	अग्नि	चिन्ता	लाभ	धन प्राप्ति	कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता
	दाह							

इसके अलावा जिस नक्षत्र पर पापग्रह हो और जो नक्षत्र पाप ग्रह से विध्द हो, वह नक्षत्र गृह प्रवेश में त्याज्य होता है। [८९]

वामरवि विचार

मुहूर्त चिन्तामणिकार रामदैवज्ञ के मतानुसार गृह प्रवेश के समय पूर्वाभिमुख भवन में प्रवेश लग्न के अष्टम स्थान की राशि से ५ राशियों तक, दक्षिणाभिमुख भवन में प्रवेश लग्न से पंचम स्थान की राशि से ५ राशियों तक पश्चिमाभिमुख भवन में प्रवेश लग्न से द्वितीय भाव की राशि से ५ राशियों तक और उत्तराभिमुख भवन में प्रवेश लग्न से एकादश स्थान की राशि से ५ राशियों तक रवि वाम होता है। यह गृह प्रवेश में शुभ होता है।[९०]

---

८८. तत्रैव श्लो० १९
८९. तत्रैव श्लो० ७
९०. तत्रैव श्लो० १८

द्वार की दिशा के अनुसार तिथियाँ

भवन के द्वार की दिशा के अनुसार शुभ तिथियों का विचार इस प्रकार किया जाता है -

द्वार दिशा	तिथियाँ (११)
पूर्वाभिमुख	पूर्णा - ५, १०, १५
दक्षिणाभिमुख	नन्दा - १, ६, ११
पश्चिमाभिमुख	भद्रा - २, ७, १२
उत्तराभिमुख	जया - ३, ८, १३

पृष्ठस्थ शुक्रविचार

शुक्र का पूर्व आदि दिशाओं में परिभ्रमण चन्द्रमा के समान होता है, यथा-मेष, सिंह एवं धनु राशि में स्थित शुक्र पूर्व में, वृष, कन्या एवं मकर राशि में स्थित शुक्र दक्षिण में, मिथुन, तुला एवं कुम्भ राशि में स्थित शुक्र पश्चिम में और कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि में स्थित शुक्र उत्तर दिशा में माना जाता है।

गृह प्रवेश के समय मुख्य द्वार में, जिस दिशा की ओर अभिमुख होकर गृह प्रवेश करना हो उसके सामने की दिशा में स्थित शुक्र पृष्ठस्थ या पीठ पीछे होता है। गृह प्रवेश में शुक्र का पृष्ठस्थ होना अर्थात् पीठ पीछे होना शुभ फलदायक होता है।

जीर्ण (द्वन्द) गृहप्रवेशमुहूर्त

टूटे-फूटे, पुराने या वास्तुदोष का सुधार करने अथवा जीर्णोद्धार करने के बाद गृह प्रवेश में गुरू एवं शुक्र के अस्त होने का विचार नहीं किया जाता। इसका मुहूर्त इस प्रकार है -

मास	बैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण, कार्तिक, मार्ग, माघ एवं फाल्गुन
तिथि	२, ३, ५, ७, १०, ११, १२ एवं १३ तिथियॉ
नक्षत्र	रोहि, उ. फा, उ. षा, उ. भा, पुष्य, चित्रा, स्वाति अनुराधा, मृगशीर्ष, धनि, शत एवं रेवती
वार	सोम, बुध, गुरू, शुक्र एवं शनिवार

गृह प्रवेश की विधि

गृहप्रवेश के पूर्व वास्तुशान्ति एवं ग्रह शान्ति का विधिवत अनुष्ठान कर शुभमुहूर्त में पूर्ण कुम्भ लेकर वेद मन्त्रों के उच्चारण एवं मंगलगान पूर्वक तोरण फूलमालाओं से सजे घर में सपत्नीक गृहस्वामी को प्रवेश करना चाहिए।
